४

फणीश्वरनाथ रेणु

श्रेष्ठ कहानियाँ

कमलेश्वर द्वारा लिखित

मेरा हमदम : मेरा दोस्त

नये कहानीकार
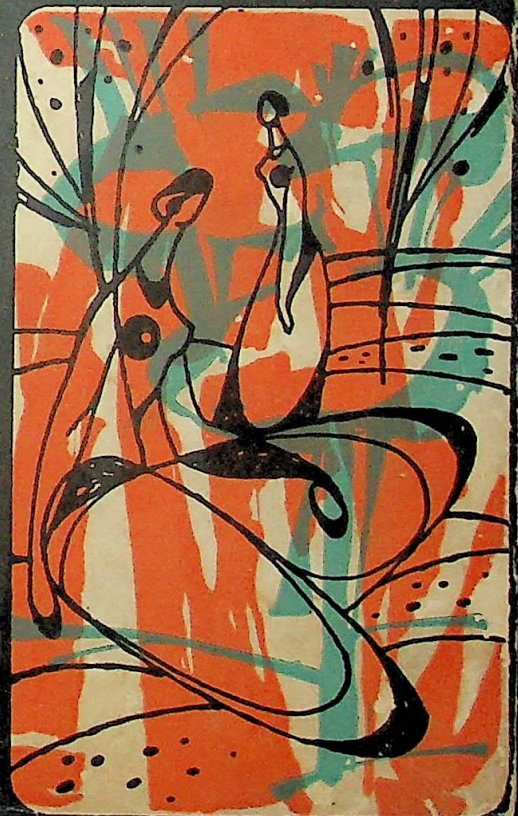
सम्पादक—राजेन्द्र यादव

फणीश्वरनाथ रेणु

जन्म : ४ मार्च, १९२१, पूर्णियां (बिहार)
प्रथम रचना : बटबाबा (कहानी), १९४६
साप्ताहिक 'विश्वमित्र' कलकत्ता

अन्य रचनाए

कहानी-संग्रह

* ठुमरी

उपन्यास

* मैला आंचल
* परती : परिकथा
* जुलूस
* दीर्घतपा
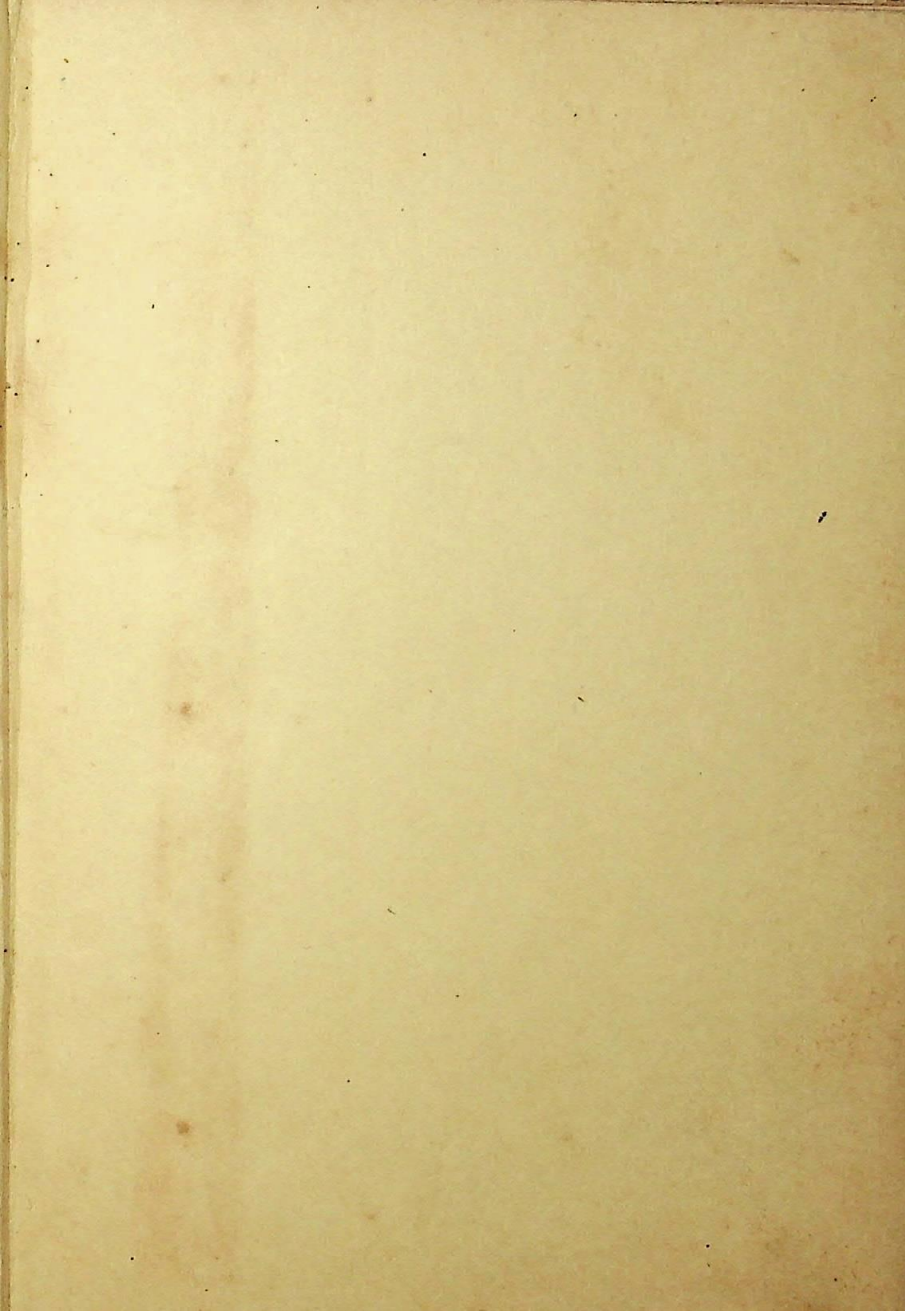
'नये कहानीकार'

सम्पादक : राजेन्द्र यादव

फणीश्वरनाथ रेणु : श्रेष्ठ कहानियां

कमलेश्वर द्वारा

मेरा हमदम : मेरा दोस्त

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

क्रम

जिस मंच पर मीताली का उदय हुआ था, उसीपर वह मर गई···क्योंकि उसके पति ने आग्रह किया था, "मीताली रानी, ठुमरी गाती हो तो विशुद्ध ठुमरी गाओ···" जो मीताली "मूल राग से आंख-मिचौली खेलती हुई, छोटी-छोटी आंचलिक रागिनियां" मिलाकर अजाने ही श्रोताओं को मोह लेती थी उसे ही शुद्धता का सवाल ले बैठा···

लेकिन "उसी दिन गीत-व्रत लिया था गीताली ने" सरल-सुगम-सहज संगीत को स्वतन्त्र मर्यादा दिलावेगी !··· मीताली' दी की परित्यक्ता रागिनियों को उदारदापूर्वक आश्रय दिया उसने··· क्योंकि उसके गुरु ने कहा था—तानपूरे को गोद में लेकर, "देखती है, इसमें सिर्फ चार ही तार हैं···किन्तु इन्हीं चार तारों से सात स्वर उत्पन्न होते हैं··· तुम्हारी दीदी ने सहायक नाद की

उपेक्षा की। तुम ऐसा न करना। सौभाग्य से यंत्र तुम्हारा उत्तम है…"

रेणु का यंत्र सचमुच उत्तम है, और मूल नाद से उत्पन्न होनेवाले हर छोटे-छोटे-से सहायक नाद को स्वरबद्ध कर देने की उसमें क्षमता है…वह कथा को शुद्धता के दंभ (स्नॉबरी) से उतारकर आंचलिक धरातल पर लाता है, और ऐसी सहज-सुगम सरलता से लाता है कि 'मैले आंचल' का हर पौधा, हर कण अपनी सजीवता में स्वयं बोल उठे…ध्वनि और गंध की छोटी से छोटी लहरी रेणु की कथा में स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व रखती है, उसके पात्रों के निर्माण में कुछ अजब तरलता से घुलकर एकाकार हो जाती है…

अपनी कहानियों की योजना में उसने बंगला की तरलता और हिन्दी के यथार्थ बोध का सुन्दरतम मिश्रण किया है…कभी लगता है : रेणु मूलतः करुणा का कथाकार है, और कभी लगता है वह कठोर वास्तविकता का निष्करुण, तटस्थ चितेरा है। बहरहाल यह सच है कि अन्य ग्रामीण अंचल पर लिखनेवालों की तरह न तो उसका यथार्थ जीवन-शून्य स्मृतियों का लेखा है और न शैली का दयनीय उलझाव…अंचल की हर सिकुड़न और जटिलता को उसने बड़ी सुलझी निगाहों और महीन कलम से आंका है…लोक-गीत की मधुर लयात्मकता उसकी हर रेखा से बोलती है !

नहीं, बोलती नहीं ; पाठक उसे हमेशा अपने मन में कहीं महसूस करता है…हिरामन गाड़ीवाले की पीठ में लगती गुदगुदी की तरह और बैलगाड़ी का यह सफर, ऐन्द्रिय बोध को अनेक स्तरों पर छू सकनेवाली रूपाकृतियों और बिम्बों के बीच जाने कब कट जाता है ! परिवेश—वातावरण—जीवित पात्र की तरह सामने खड़ा होकर अपना हक शायद अकेले 'रेणु' में ही मांगता है…परती परिकथा के सात पेड़, या गीताली का तानपूरा…या दुर्बादास का टेबुल…नागरिक संश्लिष्ट संकुलता का अद्‌भुत प्रतीक…उसके यहां हर सहायक नाद मूल नाद जैसे विशिष्ट है।

रेणु का पाठक कहानी पढ़ता नहीं, देखता है…एक-एक ध्वनि, एक-

एक गंध, एक-एक रंग को महसूस करता हुआ उसे जीता है, उसके गहरे अर्थों को जानकर चकित होता है ; ज़िन्दगी में जिन्हें बुरे लोग समझा था, सब उसकी कथा-प्रक्रिया में गुज़रकर हल्के व्यंग्य के बावजूद 'अच्छे आदमी' बन जाते हैं। उसके पुरुष और नारी दोनों 'पुरुष' नहीं हैं, मूलतः अपने सारे यथार्थवाद के बावजूद उसका सॉफिस्टीकेशन बताता है कि वह कोमलता का कथाकार है···'अज्ञेयन' रोमानियत के साथ···
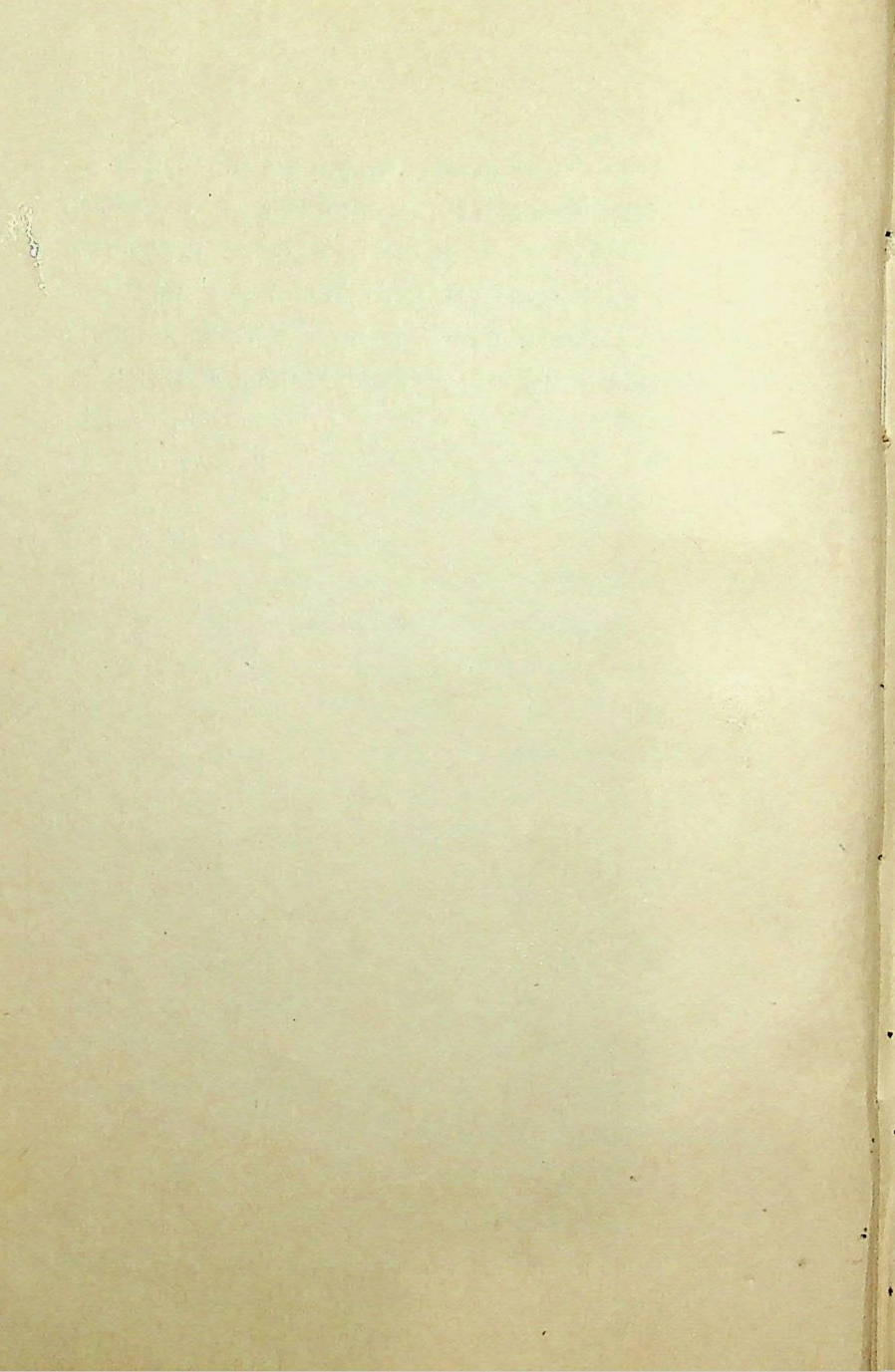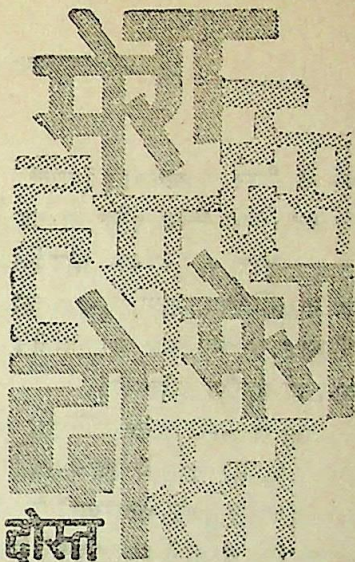
मेरा हमदम : मेरा दोस्त

बरसात का एक दिन है ! सामनेवाला सेमल का वृक्ष भीग रहा है। नंगा सेमल का वृक्ष ! कुछ अजीब-सा आकार है उस सेमल के पेड़ का—मज़बूत तने पर उगे हुए बड़े-बड़े कांटे और बहुत ऊपर जाकर आकाश की ऊंचाइयों में फैली हुई उसकी दो कंटीली बांहें।

रेणु 'परती-परिकथा' लिखने में मशगूल है। बड़े-बड़े बाल माथे पर भूल रहे हैं और चित्रों के अक्षर-शब्द कागज़ पर उतरते जा रहे हैं। मैं रेणु को गौर से देखता हूं, उसकी आंखें एकाएक कागज़ पर से उठती हैं और मैं उसकी आंखों का तेज सहन नहीं कर पाता। सुनहरी कमानी के बहुत ही नाजुक-से

चश्मे के भीतर से झांकती हुई आंखें ! उस क्षण, उनमें एक अलौकिक तेज था…जैसे दिव्य दृष्टि का तेज हो और बीसवीं सदी का यह संजय रूप-गंध, स्वर, नाद, आकार और बिम्बों के माध्यम से 'महाभारत' की सब वास्तविकता, सत्य, घृणा, हिंसा, प्रमाद, मानवीयता, आक्रोश और दुर्घटनाएं बयान करता जा रहा है। उसके ऊंचे माथे पर महर्षि वेद व्यास का आशीष अंकित है।

रेणु के चारों तरफ पवित्रता भरी हुई है…हर तरफ सत्य का आभास है, हर वस्तु में एक आध्यात्मिक आस्था की चमक है और रेणु सबके दुःखों से दुःखी, अत्याचारों से पीड़ित और 'महाभारत' के दौरान खण्डित होते मूल्यों से म्लान अपनी मेज़ पर झुका हुआ, अपनी उस दिव्य दृष्टि से विराट सत्य को देख रहा है—सदी का वह सत्य, निरपेक्ष भाव से अपनी सारी भयावहता, संवेदनशीलता और विघटित होते जीवन के दुःख-दर्द के साथ अंकित होता जा रहा है…सत्य को उद्घाटित करने की पीड़ा उसके चेहरे पर खुबी हुई है।

और जब सत्य को अंकित करते-करते वह भीतर ही भीतर स्वयं बहुत घबराता है, तो हाशिये पर लोककला की शैली में कुछ बनाता है …और फिर लिखने में जुट जाता है।

बारिश रुक गई है। सदी का युद्ध कुछ थम गया है। योद्धा अपने शिविरों को लौट गए है—चारों तरफ एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ है। तब रेणु अपनी सृष्टि से निकलकर लतिकाजी के सामने खड़ा हो जाता है…लतिकाजी जानती हैं कि अब वह क्यों इस तरह खड़ा है ! पर रेणु के 'राशन' पर सख्त पाबंदी लगी हुई है। रेणु की आंखों में एक शैतानी झिलमिलाती है और वह पेट में तकलीफ की शिकायत करता हुआ डाक्टर के पास जाने की बात कहता है। रिक्शे पर बैठकर वह सिविल लाइन्स तक जाता है और इधर-उधर घूमकर वापस जाने लगता है। अकस्मत् मैं उसे सिविल लाइन्स से जाते हुए देखता हूं और हम

साथ हो जाते हैं।

लतिकाजी के सामने हम दोनों खड़े हैं। लतिकाजी अपने बंगाली लहजे में पूछती हैं, "डाक्टर किया बोला···?"

और जो कुछ रेणु बताता जा रहा है, मैं उसकी ताइद करता जा रहा हूं। आखिर वह निहायत मामूली ढंग से कहता है, "डाक्टर ने कहा है, पेट को सर्दी लग गई है···मुर्गा खाओ और थोड़ी-सी···"

लतिकाजी अविश्वास से देखती हैं। मैं आंखों से हुंकारा देता हूं कि बात सही है, डाक्टर ने बताया है। और लतिकाजी की पाबंदी टूट जाती है। रेणु फिर रिक्शा लेकर 'बार' की तरफ भागता है।

तब रेणु एक निहायत मामूली-सा आदमी हो जाता है और पी लेने के बाद बहुत कम, पर गम्भीरता से बात करता है। लोगों ने उसकी वह गम्भीरता ही ज़्यादा देखी है। ऐसे में भीतर से वह बहुत मस्त और बेफिक्र होता है और ऊपर से बहुत सीधा दिखाई पड़ता है। उसकी सुलगती हुई आंखों में बड़ी निश्छलता होती है। ऐसे में अगर कोई साहित्य-चर्चा करे तो वह सिर्फ सुनता है, बोलता नहीं, इसीलिए और भी ज़्यादा गुरु-गम्भीर दिखाई पड़ता है।

रेणु के आसपास एक अजीब तरह का अंधियारा भरा रहता है। वह अंधियारा है उसके व्यक्तित्व के खमों का। रेणु के व्यक्तित्व में बहुत-से अधूरे व्यक्तित्व समाए हुए हैं, जो अपनी पूर्णता प्राप्त करने के लिए समय-समय पर कुलबुलाकर जागते हैं। उसके चारों तरफ एक संशय भरा रहता है और देखनेवाले को लगता है कि यह व्यक्ति बहुत ही पेचीदा है। इसके बारे में सुनिश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। बहुत हद तक यह सही भी है। क्योंकि रेणु स्वयं नहीं जानता कि उसका 'कल' क्या होगा ! उसने कभी कल की परवाह नहीं की और अतीत की थाती पर जीना उसका स्वभाव नहीं। उसका उद्धत अहं भरपूर वर्तमान में जीता है, और खूब जीता है···

हिन्दी की नई पीढ़ी के लेखकों में शायद रेणु ही वह अकेला व्यक्ति है, जिसने कर्मयोगी के रूप में सारे कटु और विषम अनुभवों को झेला है और ज़िन्दगी के कटुतम अनुभवों को आशीर्वादस्वरूप अपने माथे पर धारण किया है। यहां तक कि जब वह हिन्दी में एक धूमकेतु की तरह आया, तो उसके साथ उसकी ज़िन्दगी की कहानियां भी आईं—कुछ ऐसी कहानियां जिनसे वह खुद भी बेखबर था। एक तरफ वह यश और ख्याति का आसमान चूम रहा था तो दूसरी तरफ लांछनाओं और बदनामियों के उबलते हुए सागर में डूबा जा रहा था। इतनी ऊंचाइयों और इतनी नीचाइयों में एक साथ अब तक किसीको नहीं रहना पड़ा है। शायद इतना अकेला रेणु कभी नहीं रहा है।

एक बार बहुत ही धीरे से रेणु ने कहा था, "कुछ है जो मुझे साधे है, नहीं तो पता नहीं क्या हो जाता···"

और उसके घर के दरवाज़े पर किसी कदम की आहट उसे सशंक कर देती थी—पता नहीं; यह दोस्त की आहट है या दुश्मन की। इसीलिए वह पटना से इलाहाबाद आया था कि उन आहटों से नजात पा सके। जब पूरे हिन्दी-संसार में रेणु का डंका बज रहा था, तो वह कानों में अंगुलियां दिए किसी अनजान कोने में दुबककर बैठा रहने के लिए मजबूर था। कोई ऐसा कोना—जहां उसे कोई न देख सके। जहां वह कुछ भी न सुन सके—वह असंस्पृक्त होकर रह सके। ज़िन्दगी की यह मजबूरी भी कैसी थी कि रेणु अपनी ही ख्याति से भागा-भागा घूम रहा था। शायद रेणु इतने महान सम्मान और इतने असीम यश के लिए तैयार नहीं था···

एक तरफ यह था और दूसरी तरफ बिहार के साहित्यिक उपजीवियों द्वारा उसके बारे में गंदी से गंदी कहानियां प्रचारित की जा रही थीं—

"रेणु ने 'मैला आंचल' खुद नहीं लिखा है।"

"यह उपन्यास एक बंगला उपन्यास का चरबा है।"

"रेणु बहुत ओछा आदमी है।"

"रेणु अपनी एक पत्नी की हत्या करके भाग आया है।"

"रेणु चरित्रहीन है।"

"वह बिहार में कहीं मुंह नहीं दिखा सकता, इसीलिए इलाहाबाद भागकर गया है!"

और इलाहाबाद में रेणु के आने के बाद बहुत-से लोग बिहार से इसीलिए आते थे कि वे रेणु की सद्यः बनी हुई सम्मान-प्रतिमा को खण्डित करें। इलाहाबाद और पटना के बीच एकाएक लोगों का दौरदौरा बढ़ गया था और हर शाम रेणु के बारे में एक से एक अजूबा 'सत्य' घटनाओं का उद्घाटन होता था।

पर रेणु का आत्मविश्वास विशाल चट्टान की तरह खड़ा हुआ था। उसकी खामोशी सब आवाज़ों को लौटा देती थी। बस उसके चेहरे पर एक दर्द से भरी हल्की मुस्कान उभरती थी और वह इतना ही बोलता था, "कमलेश्वर भाय···"

रेणु ने अपने बारे में, अफवाहों के बारे में, कभी कोई जवाब नहीं दिया। ऐसे तकलीफदेह क्षणों में वह अगर बात करता था तो पूर्णिया की··· नेपाल की···वहां की खूबसूरती और नादस्वर से युक्त लोकजीवन की।

कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि रेणु भारतीय कम, नेपाली ज़्यादा है। रेणु नेपाली कम, बिहारी ज़्यादा है; रेणु बिहारी कम, हिन्दू ज़्यादा है। 'हिंदू' उस संकीर्ण अर्थ में नहीं, जोकि साम्प्रदायिकता की गंध देता है···बल्कि अपने सर्वथा उदार और विशिष्ट अर्थ में। रेणु के व्यक्तित्व में एकदेशीयता है—ऐसी, जो बहुत भली लगती है और कभी-कभी बहुत निरीह, मासूम और दकियानूसी भी। रेणु इस देशीय या जातीय जीवन में डूबा हुआ व्यक्ति है—उसमें पूरी तरह रसा-बसा। ग्रामांचल पर लिखनेवाले अन्य लेखकों की फैशनपरस्ती उसके पास नहीं है।

रेणु के व्यक्तित्व के दो पहलू बहुत मिलते-जुलते हैं—उसकी कृतियों में आस्था का स्वर और उसके अपने जीवन की आस्थापूर्ण दृष्टि। एक

जीवन है जो संस्कार से उसे मिला है और उसे वह पूरी आस्था से जी रहा है—वह आस्तिक है और शक्ति का उपासक। तंत्रविद्या और तंत्र-साधना में उसकी रुचि है…

मौका ता मुझे याद नहीं, पर एक दिन पता लगा था कि रेणु तंत्र-साधना में लीन है और सिद्धि के लिए कर्मकाण्ड का पूरा आयोजन कर कुशासन पर आसीन है और अर्धरात्रि में कुक्कुट की बलि देगा। तीन दिन तक रेणु से मुलाकात नहीं हुई थी, और मैं उसके बारे में तरह-तरह की बातें सोचने लगा था।

लेखन में जितना वह सर्वहारा है, जीवन में उतना ही सामंती है। रेणु के नख-शिख में सामंती स्वरूप झलकता है—विशुद्ध बिहारी सामंतशाही का प्रतिरूप है रेणु। सुन्दर, सांवला, तराशा हुआ चेहरा-मोहरा, बहुत सेक्सी होंठ, खुमार-भरी आंखें और नरम हाथ-पैर देखकर किसी बिहारी ज़मींदार का आभास होता है। बातचीत में एक अजीब-सी शालीनता और धीरज है। जितने दिनों के लिए मैंने उसे जाना, मैंने उसे कभी धीरज खोकर बात करते या ऊंची आवाज़ में बोलते नहीं सुना। उन क्षणों में भी, जबकि वह आपा खोकर घर की सब क्राकरी तोड़ रहा था और उसका कुत्ता सिपू घर की बंद चहारदीवारी में बुरी तरह भौंक-भौंककर उसे काटने को दौड़ रहा था।

दूसरे दिन रेणु बहुत हारा और थका-सा बैठा था। उसकी बांहों पर सिपू के पंजों के निशान थे और लतिकाजी बाहर नहीं निकल रही थीं। सचमुच सिपू लतिकाजी के प्रति बहुत वफादार था और ऐसे भीषण क्षणों में अपनी कोशिश-भर वह रेणु को उनके पास नहीं फटकने देता था।

तब मुझे रेणु के प्रति बड़ी ग्लानि हुई थी…पर कुछ क्षणों के लिए ही। साथ घूमते-घूमते रेणु कुछ स्मृतियों में खो गया था और बड़े ही स्नेह-भीगे स्वर में उसने बताया था, "५२-५३ में बीमारी से मेरी ऐसी

हालत हो गई थी कि घरवालों और मित्रों ने मुझे अस्पताल में फिंकवा दिया था—यही सोचकर कि मैं वहीं मरूं...शरीर टूट गया था...मेरे चारों तरफ घुप्प अंधेरा था। मैं एकदम अकेला था और यह जान रहा था कि मैं मर रहा हूं...तभी मुझे लतिका मिली थी। उस अस्पताल में नर्स थी। लतिका ने मुझे जिलाया...साधुओं की तरह लिपटी हुई जटाओं को कई हफ्तों तक निरन्तर साफ किया और लतिका ने अपना सब कुछ भुलाकर मुझे जीवनदान दिया...यह ज़िन्दगी लतिका की ही दी हुई है, जिसके बल पर मैं लेखक बना..."

यह सब रेणु ने बहुत तकलीफ से बताया था। उन दिनों को याद करना उसके लिए बहुत ही कष्टसाध्य अनुभव था। और मुझे लगा था कि रेणु में एक मौलिक मासूमियत है, जो उसे उस किसीका बना देना चाहती है, जो उसे कुछ भी मन से दे देता है।

उसके व्यक्तित्व की यह विशेषता भी उसे हिन्दू बनाती है और एक आस्तिक हिन्दू के नाते ही उसके भीतर एक सतत विद्रोह है। यह विद्रोह जब राजनीति में उभरा, तो वह कोईराला-बन्धुओं के साथ नेपाल की सक्रिय राजनीति में कूद पड़ा। क्रान्तिकारी के रूप में वह नेपाल को एकतंत्री राजशाही से मुक्त करने के लिए ऊबड़-खाबड़ तराइयों में भटकता रहा। उसने विद्रोही सेना का साथ दिया और विद्रोहियों द्वारा परिचालित नेपाल रेडियो का प्रथम डायरेक्टर जनरल बना।

नेपाल की मुक्ति के लिए रेणु ने अपने यौवन का बलिदान दिया और सक्रिय राजनीति में अपने को भूलकर जुटा रहा। इसीसे वह टूट गया...उसने अपने शरीर को क्षत-विक्षत कर लिया और ५२-५३ में वह राजनीति के क्षेत्र से एक थके हुए योद्धा के रूप में लौटा और मरने का इंतज़ार करने लगा।

वे दिन कितने भयावह रहे होंगे, जब रेणु के चारों ओर दमघोंट अंधेरा, सरकती आती मौत के पांवों की आहट का सन्नाटा और निपट अकेलापन होगा! तब कितना छटपटाया होगा यह व्यक्ति। कितनी

बेबसी होगी उन आंखों में, जिनमें आज एक अलौकिक तेज है···

अस्पताल के बिस्तर पर बदी मौत को तो बहुतों ने टाल दिया होगा, पर ज़िन्दा होते हुए मृत रहने की मजबूरी को एकाध ही टाल पाया है। रेणु ने अपनी मौत से भी विद्रोह किया, और इस हद तक किया कि अब कोई भी मौत उसे कभी नहीं मार पाएगी। एक 'मैला आंचल' की ममता है और एक रेणु के मन की ममता है—दोनों एक ही स्वर में बोलती हैं—"विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है, उसको पराजित करना असम्भव है।···सबारि ऊपर मानुस सत्य।"

और अपने समय के मानुस का सत्य इस गंध-स्वरजीवी हिन्दू ने पा लिया है—आस्तिकता और आस्था से।

कथागायक रेणु के लिए राशन के साथ भांग आया करती थी। भांग का सेवन करके रेणु चुप लगा जाता है और जग का मुजरा लेता है। बात करने के लिए मजबूर कीजिए तो निहायत असाहित्यिक बात करेगा। साहित्य पर बात करने के लिए घेर-घारकर लाइए तो मौका पाते ही कतरा जाएगा। साहित्य-चर्चा से रेणु का दम फूलता है और वह बात नहीं कर सकता। करेगा तो निहायत शास्त्रीय, जिसका जीवन से दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं होगा, और वह इसलिए गम्भीरता का लबादा ओढ़कर बैठ जाता है और दूसरों की बात पर ऐसी मुस्कराहट देता है जैसे वह उन्हें अच्छी तरह समझ रहा है, पर चूंकि वह बात उसके स्तर की नहीं है, इसलिए खामोश बैठा हुआ है।

यों एक घंटा पहले आप किसीको उससे मिलवा दीजिए, उसे वह शर्तिया भूल जाएगा, पर उपन्यास लिखते समय बीसवें पृष्ठ पर आया कोई पात्र यदि साठ दिन बाद भी तीन सौ चालीसवें पृष्ठ पर फिर आएगा तो रेणु को यहां तक याद रहेगा कि वह पात्र क्या बोला था और कैसे बोला था और क्यों दांत कुरेदने लगा था। तीन सौ चालीसवें पृष्ठ पर वह उस पात्र को उसके उन्हीं सूत्रों के साथ ज्यों का त्यों उठा लेगा—

उसे पन्ने पलटकर देखने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। वह दांत कुरेदना रोककर अपने इसी लहजे में बात करेगा और एकाध वाक्य बोलकर फिर पीछे छूट जाएगा।

बेहद ज़बरदस्त है रेणु की स्मरणशक्ति !

यों बीते हुए राजनीतिक जीवन के दांव-पेंच भी रेणु में हैं। वह बातों को उलझाना जानता है और गलत बातों को सही की हद तक पहुंचाने का सुचिंतित तरीका भी उसे आता है। राजनीतिज्ञों का बांकपन रेणु में है, साहित्य के क्षेत्र में ससम्मान पदार्पण करने के बाद उसने कई सबूत भी अपनी इस प्रकृति के दिए हैं···और उसने बहुत गहरे व्यावहारिक मज़ाक भी अपने समसामयिकों से किए हैं। लेकिन रेणु में ऐसे मौकों पर थोड़ी-सी साहसहीनता भी झलकती है—जब मज़ाक बहुत गहरा हो जाता है और उसका 'श्रेय' उसे मिलने लगता है तो वह भागता है, और अपने किए से इन्कार करता है।

रेणु अपने दोस्तों का दोस्त है···उसके दो दोस्तों की आपस में दुश्मनी हो सकती है पर रेणु समानान्तर रूप से उनसे दोस्ती निभा सकता है···और किसी संकट के समय, जब कि किसी एक को छोड़ने या एक का पक्ष लेने का प्रश्न आता है तो वह भारी-भरकम को चुन लेता है और उसके साथ हो जाता है। यह भी वह बहुत शालीनता से करता है, पर उसकी ऐसे क्षणों की शालीनता साहसहीनता ही होती है—यह साहसहीनता किसी मंतव्य से प्रेरित होती है या नहीं, यह कह सकना ज़रा कठिन है।

रेणु एक मित्र विहीन प्राणी है, क्योंकि उसमें दे सकने की भरपूर क्षमता नहीं है···वह खुलकर किसीको सम्पूर्णत: ग्रहण कर सकने में भी असमर्थ है···उसके व्यक्तित्व की यह कमी उसके राजनीतिक जीवन की देन है, जहां कोई किसीपर विश्वास नहीं करता, कोई किसीको कुछ नहीं समझता। इस बात ने जहां उसे व्यक्तिगत सम्बन्धों के सिलसिले में

बेकार बनाया है, वहीं उसके लेखन को एक ऐसी चमत्कृत कर देनेवाली निस्संगता प्रदान की है, जोकि उसकी कला का एक बहुत बड़ा गुण बन गया है। 'मैला आंचल' में इसीलिए हर पात्र पूर्ण रूप से उभरा है—कि उसने सबको विराग से पेश करते हुए एक अनूठे अनुराग से भर दिया है···सबके दुःख उसके लिए समान हो गए हैं, उनमें रेणु ने अपने व्यक्तित्व का हस्तक्षेप नहीं होने दिया है।

सर्वहारा के जीवन के इस कथागायक के संस्कार कुछ-कुछ उसी तरह सामंती हैं, जैसेकि बालज़क के थे। बालज़क के जीवन और कला में अन्तर्विरोध भी था। संस्कार से सामंती होते हुए भी अपने उपन्यासों में उसने सामंतवाद के विरोध में ही लिखा है और उस पद्धति पर करारे व्यंग्य किए हैं···पर रेणु 'परती-परिकथा' में अपना सारा ममत्व सामंतवादी चिन्तन को दे बैठता है। कुछ-कुछ यही उसके जीवन का क्रम है। वह सबके साथ रहकर सामाजिक जीवन जीना पसन्द करता है, पर अपने निजी क्षणों को वह सामान्य और समान स्तर के मित्रों के साथ नहीं जी सकता। उसकी यह ग्रन्थि उसे निरन्तर अकेला करती जा रही है।

अपनी इस स्थिति का दुःख रेणु को भी है, और यूं भी वह कम दुःखी व्यक्ति नहीं है। सब कुछ पा लेने के बाद भी उसके दिल में कहीं एक बेहद गहरी कसक है, जो बराबर टीसती रहती है···इसका बहुत ही हल्का-सा अहसास उन दिनों मुझे हुआ था, जब उससे मेरा लगभग रोज़ का मिलना-जुलना और काफी आत्मीय तरीके का उठना-बैठना था। सारी उपलब्धियों के बावजूद रेणु कहीं मन में किसीसे हारा हुआ है—बहुत बुरी तरह से हारा हुआ है। सब कुछ पा लेने के बाद··· सम्मान और यश के महत्तम क्षणों के बाद भी उसकी आंखों में उदासी के बादल तैर आते हैं और रेशे-रेशे होकर बिखरते रहते हैं। पर अपनी इस तकलीफ को वह बहुत चतुराई से छिपाता है और नितांत वैयक्तिक पूंजी के रूप में दबाए बैठा रहता है। यह उसकी ज़िन्दगी की एक बहुत

वड़ी ट्रेजिडी है।

यही ट्रेजिडी उसे सबसे लड़ने को बाध्य करती है—अपने समाज से, अपने आसपास से और खुद अपने से। और उसके जीवन का विकट-तम संघर्ष स्वयं अपने से चल रहा है।

रेणु एक अनवरत युद्ध में संलग्न है।

यह युद्ध समय के मैदान में लड़ा जा रहा है। और जब रेणु उसे लेखनीबद्ध करने के लिए तत्पर होता है तो कागज़ पर भी उसी युद्ध के चिह्न अंकित होते हैं। रेणु का कोई भी खत बिना तीरों के नहीं मिलेगा। उपन्यासों की पाण्डुलिपियां तो तीरों से क्षत-विक्षत होती हैं···हाशिये में, नीचे, ऊपर, दायें-बायें—सब तरफ उसकी लेखनी तीर के निशान बना-बनाकर भी संतुष्ट नहीं होती। बहुत-से शब्दों की लाशें स्याही के गोल धब्बों के कफन ओढ़े हुए कागज़ के मैदान में पड़ी होती हैं, और उनमें एक तीर घुसा हुआ होता है।

यों उनकी सही स्थिति तटस्थ संजय जैसी है—बीसवीं सदी का यह संजय दिव्य दृष्टि से सारे महाभारत को देखता जा रहा है और अपने समय के अंधे धृतराष्ट्रों और स्वयं आंखों पर पट्टी बांधे गांधारियों को उस महाभारत की सूचना देता जा रहा है···महाभारत की भयावहता से वह स्वयं भी आक्रान्त है। विघटित होते मूल्यों और उभड़ते घृणा, हिंसा और प्रतिहिंसा के सैलाब को भी वह देख रहा है···

यह दिव्य दृष्टि उसके पास तभी होती है, जब वह लिखता है··· नहीं तो बराबर पानी बरसता रहता है···रेणु सेमल के वृक्ष की तरह भीगता रहता है···उसी सेमलवृक्ष की तरह, जिसका आकार बड़ा अजीब है—मज़बूत तने पर उगे हुए बड़े-बड़े कांटे हैं और बहुत ऊपर जाकर आकाश की ऊंचाइयों में जिसकी दो कटीली बांहें फैली हुई हैं।
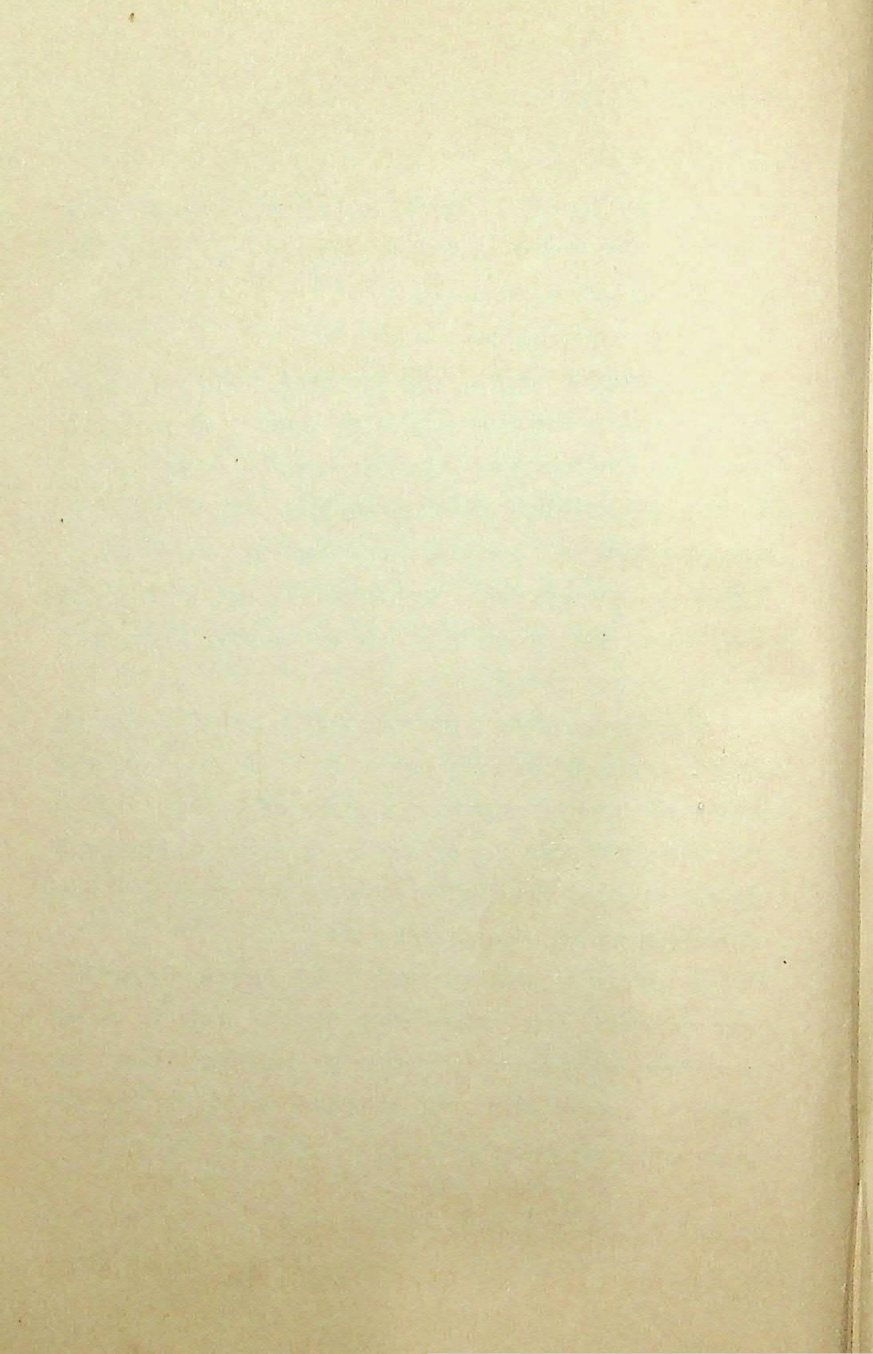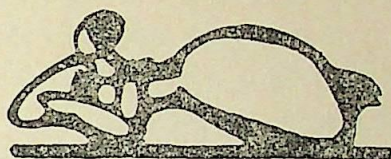
रसप्रिया

धूल में पड़े कीमती पत्थर को देखकर जौहरी की आंखों में एक नई झलक झिलमिला गई—अपरूप-रूप !

चरवाहा मोहना छौंड़ा को देखते ही पंचकौड़ी मिरदंगिया के मुंह से निकल पड़ा—अपरूप-रूप !

…खेतों, मैदानों, बाग-बगीचों और गाय-बैलों के बीच चरवाहा मोहना की सुन्दरता !

मिरदंगिया की क्षीणज्योति आंखें सजल हो गई।

मोहना ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हारी उंगली तो रसपिरिया बजाते टेढ़ी हुई है; है न ?

—ऐं !—बूढ़े मिरदंगिया ने चौंकते हुए कहा—रसपिरिया ?… हां…नहीं। तुमने कैसे…तुमने कहां सुना बे…?

'बेटा' कहते-कहते वह रुक गया।…परमानपुर में उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से 'बेटा' कह दिया था। सारे गांव के लड़कों ने उसे घेरकर मारपीट की तैयारी की थी—बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा ? मारो साले बुड्ढे को घेरकर ! मृदंग फोड़ दो।

मिरदंगिया ने हंसकर कहा था—अच्छा, इस बार माफ कर दो सरकार ! अब से आप लोगों को बाप ही कहूंगा।

बच्चे खुश हो गए थे। एक दो-ढाई साल के नंगे बालक की ठुड्डी

पकड़कर वह बोला था—क्यों, ठीक है न बापजी ?

बच्चे ठठाकर हंस पड़े थे।

लेकिन, इस घटना के बाद फिर कभी उसने किसी बच्चे को बेटा कहने की हिम्मत नहीं की थी। मोहना को देखकर बार-बार बेटा कहने की इच्छा होती है।

—रसपिरिया की बात किसने बताई तुमसे ?···बोलो बेटा !

दस-बारह साल का मोहना भी जानता है, पंचकौड़ी अधपगला है।···कौन इससे पार पाए ! उसने दूर मैदान में चरते हुए अपने बैलों की ओर देखा।

मिरदंगिया कमलपुर के बाबू लोगों के यहां जा रहा था। कमलपुर के नन्दू बाबू के घराने में अब भी मिरदंगिया को चार मीठी बातें सुनने को मिल जाती हैं। एक-दो जून भोजन तो बंधा हुआ है ही, कभी-कभी रस-चरचा भी यहीं आकर सुनता है वह। दो साल के बाद वह इस इलाके में आया है। दुनिया बहुत जल्दी-जल्दी बदल रही है।···आज सुबह शोभा मिसर के छोटे लड़के ने तो साफ-साफ कह दिया—तुम ज़ी रहे हो या थेथरई कर रहे हो मिरदंगिया ?

हां, यह जीना भी कोई जीना है ? निर्लज्जता है; और थेथरई की भी सीमा होती है।···पन्द्रह साल से वह गले में मृदंग लटकाकर गांव-गांव घूमता है, भीख मांगता है।···दाहिने हाथ की टेढ़ी उंगली मृदंग पर बैठती ही नहीं है, मृदंग क्या बजाएगा ! अब तो, 'धा तिंग' 'धा तिंग' भी बड़ी मुश्किल से बजाता है।···अतिरिक्त गांजा-भांग के सेवन से गले की आवाज़ विकृत हो गई। किन्तु, मृदंग बजाते समय विद्यापति की पदावली गाने की वह चेष्टा अवश्य करेगा।···फूटी भाथी से जैसी आवाज़ निकलती है, वैसी ही आवाज़—सों-य, सों-य !

पन्द्रह-बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोड़ी पूछ हो जाती थी। शादी-ब्याह, यज्ञ-उपनैन, मुण्डन-छेदन आदि शुभ कार्यों में बिद-पतिया मंडली की बुलाहट होती थी। पंचकौड़ी मिरदंगिया की मण्डला

ने सहरसा और पूर्णिया जिले में काफी यश कमाया है। पंचकौड़ी मिरदंगिया को कौन नहीं जानता ! सभी जानते हैं, वह अधपगला है !··· गांव के बड़े-बूढ़े कहते हैं—अरे, पंचकौड़ी मिरदंगिया का भी एक ज़माना था !

इस ज़माने में मोहना जैसा लड़का भी है—सुन्दर, सलोना और सुरीला !···रसप्रिया गाने का आग्रह करता है—एक रसपिरिया गाओ न मिरदंगिया।

—रसपिरिया सुनोगे ?···अच्छा सुनाऊंगा। पहले बताओ, किसने···

—हे ए-ए हे-ए···मोहना, बैल भागे···!—एक चरवाहा चिल्लाया —रे मोहना, पीठ की चमड़ी उधेड़ेगा करमू।

—अरे बाप !—मोहना भागा।

कल ही करमू ने उसे बुरी तरह पीटा है। दोनों बैलों को हरे-हरे पाट के पौधों की महक खींच ले जाती है बार-बार।···खटमिट्ठा पाट !

पंचकौड़ी ने पुकारकर कहा—मैं यहीं पेड़ की छाया में बैठता हूं। तुम बैल हांककर लौटो। रसपिरिया नहीं सुनोगे ?

मोहना जा रहा था। उसने उलटकर देखा भी नहीं।

रसप्रिया !

विदापत नाचवाले रसप्रिया गाते थे। सहरसा के जोगेन्दर झा ने एक बार विद्यापति के बारह पदों की एक पुस्तिका छपाई थी। मेले में खूब बिक्री हुई थी रसप्रिया पोथी की। विदापत नाचवालों ने गा-गाकर जनप्रिया बना दिया था रसप्रिया को।

खेत के 'आल' पर, झरजामुन की छाया में पंचकौड़ी मिरदंगिया बैठा हुआ है; मोहना की राह देख रहा है।···जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते हैं।···कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जाएगी क्या ? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है ? पांच साल पहले तक लोगों के दिल

में हुलास बाकी था।···पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरे-भरे पौधों से एक खास किस्म की गन्ध निकलती है। तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी—रस की डली। वे गाने लगते थे बिरहा, चांचर, लगनी। खेतों में काम करते हुए गानेवाले गीत भी समय-असमय का खयाल करके गाए जाते हैं। रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में विरहा, चांचर और लगनी—

"हां···रे, हल जोते हलवाहा भैया रे···
खुरपी रे चलावे···म-ज-दू-र !
एहि पंथे, धनी मोरा हे रूसलि···।"

खेतों में काम करते हलवाहों और मजदूरों से कोई बिरही पूछ रहा है, कातर स्वर में—उसकी रूठी हुई धनी को इस राह से जाते देखा है किसीने ?

अब तो दोपहरी नीरस ही कटती है, मानो किसीके पास एक शब्द भी नहीं रह गया है।

आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिंहकारी भरी—टिं···ई ···टिं-हि-क !

मिरदंगिया ने गाली दी—शैतान !

उसको छेड़कर मोहना दूर भाग गया है। वह आतुर होकर प्रतीक्षा कर रहा है। जी करता है, दौड़कर उसके पास चला जाए। दूर चरते हुए मवेशियों के झुंडों की ओर बार-बार वह बेकार देखने की चेष्टा करता है। सब धुंधला !

उसने अपनी झोली टटोलकर देखा—आम हैं, मूढ़ी है।···उसे भूख लगी। मोहना के सूखे मुंह की याद आई और भूख मिट गई।

मोहना जैसे सुन्दर, सुशील लड़कों की खोज में ही उसकी ज़िन्दगी के अधिकांश दिन बीते हैं।···विदापत नाच में नाचनेवाले 'नटुआ' का अनुसंधान खेल नहीं।···सवर्णों के घर में नहीं, छोटी जाति के लोगों के यहां मोहना जैसे लड़की-मुंहा लड़के हमेशा पैदा नहीं होते। ये अवतार

लेते हैं समय-समय पर। जदा जदा हि···

मैथिल ब्राह्मण, कायस्थों और राजपूतों के यहां विदापत वालों की वड़ी इज़्ज़त होती थी।···अपनो बोली—मैथिलाम—में नटुआ के मुह से 'जनम अवधि हम रूप निहारल' सुनकर वे निहाल हो जाते थे। इसलिए हर मण्डली का मूलगैन नटुआ की खोज में गांव-गांव भटकता फिरता था—ऐसा लड़का, ज़िसे सजा-वजाकर नाच में उतारते ही दर्शकों में एक फुसफुसाहट फैल जाए।

—ठीक ब्राह्मणी की तरह लगता है। है न?

—मधुकान्त ठाकुर की वेटी की तरह···।

—न:! छोटी चम्पा जैसी सूरत है!

पंचकौड़ी गुनी आदमी है। दूसरी-दूसरी मण्डली में मूलगैन और मिरदंगिया की अपनी-अपनी जगह होती। पंचकौड़ी मूलगैन भी था और मिरदंगिया भी। गले में मृदंग लटकाकर वजाते हुए वह गाता था, नाचता था। एक सप्ताह में ही नया लड़का भांवरी देकर परवेश में उतरने योग्य नाच सीख लेता था।

नाच और गाना सिखाने में कभी उसे कठिनाई नहीं हुई; मृदंग के स्पष्ट 'वोल' पर लड़कों के पांव स्वयं ही थिरकने लगते थे। लड़कों के ज़िद्दी मां-बाप से निवटना मुश्किल व्यापार होता था। विशुद्ध मैथिली में और भी शहद लपेटकर वह फुसलाता···

—किसन कन्हैया भी नाचते थे। नाच तो एक गुण है।···अरे, जाचक कहो या दसदुआरी। चोरी, डकैती और आवारागर्दी से अच्छा है अपना-अपना 'गुन' दिखाकर लोगों को रिझाकर गुजारा करना।

एक बार उसे लड़के की चोरी भी करनी पड़ी थी।···बहुत पुरानी बात है। इतनी मार लगी थी कि···बहुत पुरानी बात है।

पुरानी ही सही, बात तो ठीक है। रसपिरिया वजाते समय तुम्हारी उंगली टेढ़ी हुई थी। ठीक है न?

मोहना न जाने कब लौट आया।

मिरदंगिया के चेहरे पर चमक लौट आई। वह मोहना की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा।...'यह गुणवान मर रहा है। धीरे, धीरे, तिल-तिलकर वह खो रहा है। लाल-लाल ओठों पर बीड़ी की कालिख लग गई है। पेट में तिल्ली है ज़रूर !...

मिरदंगिया वैद्य भी है। एक झुंड बच्चों का बाप धीरे-धीरे एक पारिवारिक डॉक्टर की योग्यता हासिल कर लेता है।...उत्सवों के बासी-टटका भोज्यान्नों की प्रतिक्रिया कभी-कभी बहुत बुरी होती। मिरदंगिया अपने साथ नमक-सुलेमानी, चानमार-पाचन और कुनैन की गोली हमेशा रखता था।...लड़कों को सदा गरम पानी के साथ हल्दी की बुकनी खिलाता। पीपल, काली मिर्च, अदरक वगैरह को घी में भूनकर शहद के साथ सुबह-शाम चटाता।...गरम पानी !

पोटली से मूढ़ी और आम निकालते हुए मिरदंगिया बोला—हां, गरम पानी ! तेरी तिल्ली बढ़ गई है। गरम पानी पिओ !

—यह तुमने कैसे जान लिया ? फारबिसगंज के डाक्टर बाबू भी कह रहे थे, तिल्ली बढ़ गई है। दवा...।

आगे कहने की ज़रूरत नहीं। मिरदंगिया जानता है, मोहना जैसे लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पर ही गलती है ! क्या होगा पूछकर, कि दवा क्यों नहीं करवाते !

—मां भी कहती है, हल्दी की बुकनी के साथ रोज़ गरम पानी पी। तिल्ली गल जाएगी।

मिरदंगिया ने मुस्कराकर कहा—बड़ी सयानी है तुम्हारी मां !

केले के सूखे पत्तल पर मूढ़ी और आम रखकर उसने बड़े प्यार से कहा—आओ, एक मुट्ठी खा लो।

—नहीं, मुझे भूख नहीं।

किन्तु मोहना की आंखों से रह-रहकर कोई झांकता था, मूढ़ी और आम को एकसाथ निगल जाना चाहता था।...भूखा, बीमार, भगवान !

—आओ, खा लो बेटा !...रसपिरिया नहीं सुनोगे ?

मां के सिवा, आज तक किसी अन्य व्यक्ति ने मोहना को इस तरह प्यार से कभी परोसे भोजन पर नहीं बुलाया।…लेकिन, दूसरे चरवाहे देख लें तो मां से कह देंगे।…भीख का अन्न !

—नहीं, मुझे भूख नहीं।

मिरदंगिया अप्रतिभ हो जाता है। उसकी आंखें फिर सजल हो जाती हैं। मिरदंगिया ने मोहना जैसे दर्जनों सुकुमार बालकों की सेवा की है। अपने बच्चों को भी शायद वह इतना प्यार नहीं दे सकता।…और अपना बच्चा ! हुं !…अपना-पराया ? अब तो सब अपने, सब पराये।…

—मोहना !

—कोई देख लेगा तो ?

—तो क्या होगा ?

—मां से कह देगा। तुम भीख मांगते हो न ?

—कौन भीख मांगता है ? मिरदंगिया के आत्मसम्मान को इस भोले लड़के ने बेवजह ठेस लगा दी। उसके मन की झांपी में कुण्डलीकार सोया हुआ सांप फन फैलाकर फुफकार उठा—ए-स्साला ! मारेंगे वह तमाचा कि…

—ऐ ! गाली क्यों देते हो ?—मोहना ने डरते-डरते प्रतिवाद किया।

वह उठ खड़ा हुआ, पागलों का क्या विश्वास ?

आसमान में उड़ती हुई चील ने फिर टिहकारी भरी—टिं-हीं…ई…टिं टिं-ग !

—मोहना ! मिरदंगिया की आवाज़ गम्भीर हो गई।

मोहना ज़रा दूर जाकर खड़ा हो गया।

—किसने कहा तुमसे कि मैं भीख मांगता हूं ? मिरदंग बजाकर, पदावली गाकर, लोगों को रिझाकर पेट पालता हूं।…तुम ठीक कहते हो, भीख का ही अन्न हैं यह। भीख का ही फल है यह।…मैं नहीं

दूंगा।···तुम बैठो, मैं रसपिरिया सुना दूं।

मिरदंगिया का चेहरा धीरे-धीरे विकृत हो रहा है।···आसमान में उड़नेवाली चील अब पेड़ की डाली पर आ बैठी है!—टिं-टिं-हिं टिंटिक!

मोहना डर गया। एक डग, दो डग···दे दौड़। वह भागा।

एक बीघा दूर जाकर उसने चिल्लाकर कहा—डायन ने बान मारकर तुम्हारी उंगली टेढ़ी कर दी है। झूठ क्यों कहते हो कि रसपिरिया बजाते समय······

—एं! कौन है यह लड़का? कौन है यह मोहना?···रमपतिया भी कहती थी, डायन ने बान मार दिया है!

—मोहना!

मोहना ने जाते-जाते चिल्लाकर कहा—करैला!—अच्छा, तो मोहना यह भी जानता है कि मिरदंगिया करैला कहने से चिढ़ता है! ···कौन है यह मोहना?

मिरदंगिया आतंकित हो गया। उसके मन में एक अज्ञात भय समा गया। वह थर-थर कांपने लगा। कमलपुर के बाबुओं के यहां जाने का उत्साह भी नहीं रहा।···सुबह शोभा मिसर के लड़के ने ठीक ही कहा था।

उसकी आंखों से आंसू झरने लगे।

जाते-जाते मोहना डंक मार गया। उसके अधिकांश शिष्यों ने ऐसा ही व्यवहार किया है उसके साथ। नाच सीखकर फुर्र से उड़ जाने का बहाना खोजनेवाले एक-एक लड़के की बातें उसे याद हैं।

सोनमा ने तो गाली ही दी थी—गुरुगिरी करता है, चोट्टा!

रमपतिया आकाश की ओर हाथ उठाकर बोली थी—हे दिनकर! साच्छी रहना। मिरदंगिया ने फुसलाकर मेरा सर्वनाश किया है। मेरे मन में कभी चोर नहीं था। हे सुरुज भगवान! इस दसदुआरी कुत्ते का अंग-अंग फूटकर······।

मिरदंगिया ने अपनी टेढ़ी उंगली को हिलाते हुए एक लम्बी सांस ली।···रमपतिया ! जोधन गुरुजी की बेटी रमपतिया ! जिस दिन वह पहले-पहल जोधन की मण्डली में शामिल हुआ था—रमपतिया बारहवें में पांव रख रही थी !···बाल-विधवा रमपतिया पदों का अर्थ समझने लगी थी। काम करते-करते वह गुनगुनाती—नव अनुरागिनी राधा, किछु नंहि मानय बाधा।···मिरदंगिया मूलगैनी सीखने गया था और गुरुजी ने उसे मृदंग धरा दिया था।···आठ वर्ष तक तालीम पाने के बाद जब गुरुजी ने स्वजात पंचकौड़ी से रमपतिया के चुमौना की बात चलाई तो मिरदंगिया सभी ताल-मात्रा भूल गया। जोधन गुरुजी से उसने अपनी जात छिपा रखी थी। रमपतिया से उसने झूठा परेम किया था। गुरुजी की मण्डली छोड़कर वह रातोंरात भाग गया। उसने गांव आकर अपनी मण्डली बनाई, लड़कों को सिखाया-पढ़ाया और कमाने-खाने लगा।··· लेकिन, वह मूलगैन नहीं हो सका कभी। मिरदंगिया ही रहा सब दिन। ···जोधन गुरुजी की मृत्यु के बाद, एक बार गुलाब-बाग मेले में रमपतिया से उसकी भेंट हुई थी। रमपतिया उसीसे मिलने आई थी। पंचकौड़ी ने साफ जवाब दे दिया था—क्या झूठ-फरेब जोड़ने आई है ? कमलपुर के नन्दू बाबू के पास क्यों नहीं जाती, मुझे उल्लू बनाने आई है ! नन्दू बाबू का घोड़ा बारह बजे रात को···। चीख उठी थी रमपतिया—पांचू, चुप रहो !

उसी रात रसपिरिया बजाते समय उसकी उंगली टेढ़ी हो गई थी। मृदंग पर जमनिका देकर वह परवेस का ताल बजाने लगा। नटुआ ने डेढ़ मात्रा बेताला होकर प्रवेश किया तो उसका माथा ठनका। परबेस के बाद उसने नटुआ को झिड़की दी—एस्साला ! थप्पड़ों से गाल लाल कर दूंगा।···और रसपिरिया की पहली कड़ी ही टूट गई। मिरदंगिया ने ताल को सम्हालने की बहुत चेष्टा की। मृदंग की सूखी चमड़ी जी उठी, दाहिने पूरे पर लावा-फरही फूटने लगे और ताल कटते-कटते उसकी उंगली टेढ़ी हो गई। झूठी टेढ़ी उंगली !···हमेशा के लिए पंचकौड़ी की मंडली

टूट गई। धीरे-धीरे इलाके से विद्यापति नाच ही उठ गया। अब तो कोई विद्यापति की चर्चा भी नहीं करते हैं।···धूप-पानी से परे, पंचकौड़ी का शरीर ठण्डी महफिलों में ही पनपा था।···बेकार ज़िन्दगी में मृदंग ने बड़ा काम दिया। बेकारी का एकमात्र सहारा—मृदंग !

एक युग से वह गले में मृदंग लटकाकर भीख मांग रहा है—धा तिंग, धा तिंग !

वह एक आम उठाकर चूसने लगा—लेकिन, लेकिन,···लेकिन··· मोहना को डायन की बात कैसे मालूम हुई ?

उंगली टेढ़ी होने की खबर सुनकर रमपतिया दौड़ी आई थी, घंटों उंगली को पकड़कर रोती रही थी—हे दिनकर, किसने इतनी बड़ी दुश्मनी की ? उसका बुरा हो।···मेरी बात लौटा दो भगवान ! गुस्से में कही हुई बातें। नहीं, नहीं। पांचू, मैंने कुछ भी नहीं किया है। जरूर किसी डायन ने वान मार दिया है।

मिरदंगिया ने आंखें पोंछते हुए ढलते हुए सूरज की ओर देखा !··· इस मृदंग को कलेजे से सटाकर रमपतिया ने कितनी रातें काटी हैं।··· मृदंग को उसने छाती से लगा लिया।

पेड़ की डाली पर बैठी हुई चील ने उड़ते हुए जोड़े से कुछ कहा— टिं-टिं-हिंक् !

—एस्साला !—उसने चील को गाली दी। तम्बाकू चुनियाकर मुंह में डाल ली और मृदंग के पूरे पर उंगलियां नचाने लगा—धिरिनागि, धिरिनागि, धिरिनागि-धिनता !

पूरी जमनिका वह नहीं बजा सका। बीच में ही ताल टूट गया।

—अ्-कि-हे-ए-ए-ए-हा-आआ-ह-हा !

सामने झरबेरी के जंगल के उस पार किसी ने सुरीली आवाज़ में बड़े समारोह के साथ रसप्रिया की पदावली उठाई—

—न-व-वृन्दा-वन, न-व-न-व-तरु ग-न, न-व नव विकसित फूल···

मिरदंगिया के सारे शरीर में लहर दौड़ गई। उसकी उंगलियां स्वयं

ही मृदंग के पूरे पर थिरकने लगीं। गाय-बैलों के झुंड दोपहर की उतरती छाया में आकर जमा होने लगे।

खेतों में काम करनेवालों ने कहा—पागल है। जहां जी चाहा, बैठकर बजाने लगता है।

—बहुत दिन के बाद लौटा है।

—हम तो समझते थे कि कहीं मर-खप गया।

रसप्रिया की सुरीली रागिनी ताल पर आकर कट गई। मिरदंगिया का पागलपन अचानक बढ़ गया। वह उठकर दौड़ा। झरबेरी की झाड़ी के उस पार कौन है? कौन है यह शुद्ध रसप्रिया गानेवाला?···इस ज़माने में रसप्रिया का रसिक···? झाड़ी में छिपकर मिरदंगिया ने देखा, मोहना तन्मय होकर दूसरे पद की तैयारी कर रहा है। गुनगुनाहट बन्द करके···उसने गले को साफ किया। मोहना के गले में राधा आकर बैठ गई है! ···क्या बन्दिश है!

"न-दी-वह नयनक नी···र!
आहो···पललि वहए ताहि ती···र!"

मोहना बेसुध होकर गा रहा था। मृदंग के बोल पर वह झूम-झूम कर गा रहा था। मिरदंगिया की आंखें उसे एकटक निहार रही थीं और उसकी उंगलियां फिरकी की तरह नाचने को व्याकुल हो रही थीं।··· चालीस वर्ष का अधपागल युगों के बाद भावावेश में नाचने लगा।··· रह-रहकर वह अपनी विकृत आवाज़ में पदों की कड़ी धरता—फोंय-फोंय, सोंय-सोंय!

धिरनागि धिनता!

"दुहु रस···म···य तनु गुने नहीं ओर।
लागल दुहुक न भाँगय जो-र!"

मोहना के आधे काले और आधे लाल ओठों पर नई मुस्कराहट दौड़ गई। पद समाप्त करते हुए वह बोला—इस्स? टेढ़ी उंगली पर भी इतनी तेज़ी?

मोहना हांफने लगा। उसकी छाती की हड्डियां !

—उफ !—मिरदंगिया धम्म से ज़मीन पर बैठ गया—कमाल ! कमाल !···किससे सीखे ? कहां सीखी तुमने पदावली ? कौन है तुम्हारा गुरु ?

मोहना ने हंसकर जवाब दिया—सीखूंगा कहां ? मां तो रोज़ गाती है।···प्रातकी मुझे बहुत याद हैं, लेकिन अभी तो उसका समय नहीं।

—हां बेटा ! बेताले के साथ कभी मत गाना-बजाना। जो कुछ भी है, सब चला जाएगा।···समय-कुसमय का भी खयाल रखना। लो, अब आम खा लो।

मोहना बेझिझक आम लेकर चूसने लगा।

—एक और लो।

मोहना ने तीन आम खाए और मिरदंगिया के विशेष आग्रह पर दो मुट्ठी मूढ़ी भी फांक गया।

—अच्छा, अब एक बात बताओगे मोहना, तुम्हारे मां-बाप क्या करते हैं ?

—बाप नहीं हैं, अकेली मां है। बाबू लोगों के घर कुटाई-पिसाई करती है।

—और तुम नौकरी करते हो ? किसके यहां ?

—कमलपुर के नन्दू बाबू के यहां।

—नन्दू बाबू के यहां ?

मोहना ने बताया, उसका घर सहरसा में है। तीसरे साल सारा गांव कोसी मैया के पेट में चला गया। उसकी मां उसे लेकर अपने ममहर आई है—कमलपुर।

—कमलपुर में तुम्हारी मां के मामू रहते हैं ?

मिरदंगिया कुछ देर तक चुपचाप सूर्य की ओर देखता रहा।···नन्दू बाबू···मोहना···मोहना की मां !

—डायनवाली बात तुम्हारी मां कह रही थी ?

—हां । और एक बार सामदेव झा के यहां जनेऊ में तुमने गिरधर पटट्री मण्डलीवालों का मिरदंग छीन लिया था ।···बेताला बजा रहा था । ठीक है न ?

मिरदंगिया की खिचड़ी दाढ़ी मानो अचानक सफेद हो गई। उसने अपने को सम्हालकर पूछा—तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?

—अजोधादास !

—अजोधादास ?

बूढ़ा अजोधादास, जिसके मुंह में न बोल, न आंख में लोर।··· मण्डली में गठरी ढोता था । विना पैसा का नौकर बेचारा अजोधादास !

—बड़ी सयानी है तुम्हारी मां ।—एक लम्बी सांस लेकर मिरदंगिया ने अपने झोली से एक छोटा बटुआ निकाला । लाल-पीले कपड़ों के टुकड़ों को खोलकर कागज़ की एक पुड़िया निकाली उसने ।

मोहना ने पहचान लिया—लोट ? क्या है, लोट ?

—हां, नोट है ।

—कितने रुपये वाला है ? पंचटकिया । ए···दसटकिया ? ज़रा छूने दोगे ? कहां से लाए ?—मोहना एक ही सांस में सब कुछ पूछ गया—सब दसटकिया हैं ?

—हां, सब मिलाकर चालीस रुपये हैं ।—मिरदंगिया ने एक बार इधर-उधर निगाहें दौड़ाईं, फिर फुसफुसाकर बोला—मोहना बेटा ! फारबिसगंज के डागडर बाबू को देकर बढ़िया दवा लिखा लेना ।···खट्टा-मिट्ठा परहेज़ करना ।···गरम पानी ज़रूर पीना ।

—रुपये मुझे क्यों देते हो ?

—जल्दी रख ले, कोई देख लेगा ।

मोहना ने भी एक बार चारों ओर नज़र दौड़ाई। उसके होठों की कालिख और गहरी हो गई।

मिरदंगिया बोला—बीड़ी-तम्बाकू भी पीते हो ? खबरदार !

वह उठ खड़ा हुआ।

मोहना ने रुपये ले लिए।

—अच्छी तरह गांठ में बांध ले। मां से कुछ मत कहना।

—और हां, यह भीख का पैसा नहीं। बेटा, यह मेरी कमाई के पैसे हैं। अपनी कमाई के…

मिरदंगिया ने जाने के लिए पांव बढ़ाया।—मेरी मां खेत में घास काट रही है। चलो न!—मोहना ने आग्रह किया।

मिरदंगिया रुक गया। कुछ सोचकर बोला—नहीं मोहना। तुम्हारे जसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी मां 'महारानी' हैं, मैं महाभिखारी दसदुआरी हूं। जाचक, फकीर…। दवा से जो पैसे बचें, उसका दूध पीना।

मोहना की बड़ी-बड़ी आंखें कमलपुर के नन्द बाबू की आंखों जैसी हैं…।

—रे मो-ह-ना-रे-हे! बैल कहां हैं रे?

—तुम्हारी मां पुकार रही है शायद।

—हां, तुमने कैसे जान लिया?

—रे-मोहना-रे-हे!

एक गाय ने सुर में सुर मिलाकर अपने बछड़े को बुलाया।

गाय-बैलों के घर लौटने का समय हो गया। मोहना जानता है, मां बैल हांककर ला रही होगी। झूठ-मूठ उसे बुला रही है। वह चुप रहा।

—जाओ।—मिरदंगिया ने कहा—मां बुला रही है। जाओ।… अब से मैं पदावली नहीं, रसपिरिया नहीं, निरगुन गाऊंगा। देखो, मेरी उंगली शायद सीधी हो रही है। शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल?

"अरे, चलू मन, चलू मन—ससुरार जइवे हो रामा,
कि आहो रामा,
नैहरा में अगिया लगायब रे-की…।"

खेतों की पगडंडी, झरबेरी के जंगल के बीच होकर जाती है। निर-गुन गाता हुआ मिरदंगिया झरबेरी की झाड़ियों में छिप गया।

—ले। यहां अकेला खड़ा होकर क्या करता है ? कौन बजा रहा था मृदंग रे ?—घास का बोझा सिर पर लेकर मोहना की मां खड़ी है।

—पंचकौड़ी मिरदंगिया।

—ऐं, वह आया है ? आया है वह ?—उसकी मां ने बोझ ज़मीन पर पटकते हुए पूछा।

—मैंने उसके ताल पर रसपिरिया गाया है। कहता था, इतना शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल !···उसकी उंगली अब ठीक हो जाएगी।

मां ने बीमार मोहना को आह्लाद से अपनी छाती से सटा लिया।

—लेकिन तू तो हमेशा उसकी टोकरी-भर शिकायत करती थी ; बेईमान है, गुरु-दरोही है, झूठा है।

—है तो ! वैसे लोगों की संगत ठीक नहीं। खबरदार, जो उसके साथ फिर कभी गया। दसदुआरी जांचकों से हेलमेल करके अपना ही नुकसान होता है।···चल, उठा बोझ।

मोहना ने बोझ उठाते समय कहा—जो भी हो, गुनी आदमी के साथ रसपिरिया···।

—चौप ! रसपिरिया का नाम मत ले।

अजीब है मां। जब गुस्साएगी तो बाघिन की तरह और जब खुश होती है तो गाय की तरह हुंकारती आवेगी और छाती में लगा लेगी। तुरत खुश, तुरत नाराज।···

दूर से मृदंग की आवाज़ आई—धा तिंग, धा तिंग।

मोहना की मां खेत की ऊबड़-खाबड़ मेड़ पर चल रही थी। ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची। घास का बोझ गिरकर खुल गया। मोहना पीछे-पीछे मुंह लटकाकर जा रहा था। बोला—क्या हुआ, मां ?

—कुछ नहीं !

—धा तिग, धा तिग !

मोहना की मां खेत की मेड़ पर बैठ गई। जेठ की शाम से पहले जो पुरवैया चलती है, धीरे-धीरे तेज़ हो गई !···मिट्टी की सोंधी सुगन्ध हवा में धीरे-धीरे घुलने लगी।

—धा तिंग, धा तिंग !

—मिरदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा ?—मोहन की मां आगे कुछ न बोल सकी।

—कहता था, तुम्हारे जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी मां महरानी है, मैं तो दसदुआरी हूं···।

—झूठा, बेईमान !—मोहना की मां, आंसू पोंछकर बोली—ऐसे लोगों की संगत कभी मत करना।

मोहना चुप खड़ा रहा।

टेबुल

मिस दुर्बा दास !
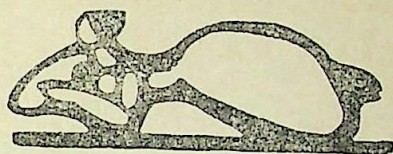
अब सिर्फ मिस दुर्बा दास नहीं । मिस दुर्बा दास, असिस्टैंट ब्रांच मैनेजर; काण्टिनेण्टल कास्मेटिक्स एण्ड ड्रग्स लि०, कलकत्ता-बम्बई-दिल्ली-पटना। ब्रांच पटना।

ब्रांच आफिस के हर सेक्शन में पिछले सात दिनों से बस एक ही चर्चा; चर्चा का एक ही विषय—दुर्बा दास, दुर्बा दास का भाग्य। डिस्पैच क्लर्क होकर कम्पनी में आई। फिर, हेडक्लर्क और आठ वर्षों के बाद असिस्टैंट ब्रांच मैनेजर का यह नया पद !

कैण्टीन की सीढ़ी के पास बैठा जमादार अभिलाख राम सुना रहा है नये बैरा सिरामदास को, "मिस साहेब को हम देखा है, जब मिस साहेब फिराक पहनती थी। बहुत बड़े हिसाबी बंगाली बाबू की बेटी है मिस साहेब। एक दिन झाड़ू देने नहीं जाओ, बस एक दिन की मजूरी तुम्हारी ज़रूर कटेगी। कहते, हराम का पैसा खाकर हड्डी क्यों गलाना चाहते हो ?"

माली बोला, "तो, खान्दानी कंजूस कहो मिस साहेब को। कल मेजर बाग से गुलाब खरीदकर, दुहरा गुलदस्ता बनाया बड़े जतन से। घर पर दे आया—खुशी-खुशी। सो, गुलदस्ता हाथ में लेकर चुटकी-भर हंसके छुट्टी।···सबके सब बिलेकप्रिंस गुलाब थे।"

सिंगेसर राम जेनरल सेक्शन का पियन दूर से ही मुस्कराता आ रहा है। उसने समझ लिया है, गप मिस साहेब के बारे में ही हो रही

है। आते ही बोला, "आज आफिसो कम्पलेट हो गइल, अगले। आज तखतीओ लटक जाई—नेम पिलेट।"

"तब तो आज से तुम्हारे डिपाट में नहीं बैठेगी?"

"यहां बैठेवाला भी आ गइलन।···बम्बई से, बाड़ा बाबू।"

सिंगेसर कैण्टीन की ओर बढ़ा तो पियन यूनियन का चंदा उगाहनेवाले पियन जगवतीप्रसाद ने रोककर कहा, "ए नेम पिलेट-कम्पलेट! किधर?···डिपाट में चाह-चू भी देगी मिस साहेब या जै-जै सियाराम?"

सिंगेसर हंसकर बोला, "ऊ गुड़ नहीं जो मक्खी खाए। ना केकरो खात देखलीं—ना केकरो के खिलावत देखलीं—आज ले।"

सचमुच, मिस दुर्बा को किसीने खाते-खिलाते नहीं देखा कभी।

जेनरल सेक्शन—जहां दुर्बा दास बैठती थी—आज सूना-सूना लगता है। कोने में बैठती थी मिस दुर्बा, हेड क्लर्क। लगता था, एक बड़ा सजा-धजा टेबुल-लैम्प जल रहा हो।···आठ साल तक वह टेबुल लैम्प—दुर्बा दास का रूपदीप—समान रोशनी लेकर हाल के कोने में जलता रहा—दस से पांच तक। कभी-कभी सात बजे शाम तक।

दिन-भर में सिर्फ दो-तीन बार उसका कॉलिंग बेल बजता, दो बार पानी पीती। लंच के समय पाउडर की डिबिया जैसे टिफिन-बक्स से एक लीली बिस्कुट निकालकर कुतर लेती। बोलती बहुत कम। मुस्कराती रहती, हर घड़ी। कहते हैं, इसी अद्‌भुत मुस्कराहट के पीछे दुर्बा की सफलताओं का रहस्य छिपा हुआ है। सेक्शन में देश के कोने-कोने से—एक से एक घाघ बाबू आए। जिसने दुर्बा की इस मुस्कराहट का गलत अर्थ लगाया—वह गया। त्रिपाठी, सिन्हा, लंगड़ा मुखर्जी—सभी ने एक ही गलती की, क्रमशः।

नगीना प्रसाद को बेवजह बात करते समय लेजर के पन्ने उलटने की आदत है और बगैर जीभ से उंगलियों को गीली किए दो पेज से अधिक नहीं उलट सकता। मिस दुर्बा ने लिखकर गंदी आदत को छोड़ने की चेतावनी दी थी।

आज नगीना प्रसाद अतिरिक्त उत्साह के साथ अनर्गल बातें कर रहा है और उसकी उंगलियां—मशीन की तरह—हर दो पन्ने के बाद जीभ से जा चिपकती हैं, "चपाक् ! चट-चट !! चपाक्···क्यों भाई, बड़ा बाबू बड़े साहेब के कमरे में है, क्यों ?"

ट्रांसपोर्ट क्लर्क सेन बोला, "अच्छा भाई। हम तो हिंदी का लिंग-ऊंग नहीं जानता कुछ···बताव तो ई मिस दास को···आइगिन···छोटा साहेब को क्या बोलेगा ? बड़ा साहब···छोटा मेम तो नहीं बोलने सकता।"

सभी हंसे !

मिस दुर्गा दास, हेड क्लर्क ने एक बार ट्रांसपोर्ट के सेन का हिसाब चेक कर कहा, "हिसाब गलत है।" सेन ने सारा दिन बैठकर हिसाब किया—करवाया। पेट्रोल के कूपनों से लेकर आटोमोबाइल-गैराज के बिलों को दुहराकर देखा। साढ़े चार बजे जो हिसाब पेश किया सेन ने—उसपर सरसरी निगाह डालकर ही मिस दुर्गा दास ने—विशुद्ध बंकिमचन्द्रीय बंगला में कहा था, "आपनि दॅया कॅरिया आपनार ब्रह्म तालुते छागवृत्त अनुलेपन कॅरुन—प्रत्यह !"[1]

पर्चेज सेक्शन के झा ने अधजली सिगरेट को सुलगाकर कहा, "ई जुल्में है कि ?"

"क्या जुल्म है ?"

"यही कि जनाना जात राज करे और मरद जात···हमारे यहां एक कहनी है कि—जे घर मौगी कैल घरबार—से घर बूझू बंटाढार।"

सेन बोला, "झा बेटा, भानुसिंघ का पॅदावली बोलता है। एं ?"

सभी बाबू जी खोलकर हंसे। आज नये बड़ा बाबू के ज्वायन करने का दिन है। स्वागत के मूड में हैं।

"बड़े बाबू अभी तक बड़े साहब के चेम्बर में हैं या छोटे ?"

चापलूस गुलसन मेहता का व्रण-जर्जर सांवली सूरत पर लाली दौड़ी। अवसर पर बोलने के लिए वह कोई अप्रचलित अंग्रेजी शब्द ढूंढ़

---

१. कृपा करके आप अपनी खोपड़ी में रोज़ बकरी के घी की मालिश करें।

रहा था, शायद। किंतु कुछ बोल नहीं सका। बड़े बाबू—नये बड़े बाबू अनुरंजन गुप्ता दफ्तर में आ गए—बड़े साहब के चेम्बर से।

मेहता ने आगे बढ़कर स्वागत-नमस्कार किया। सहकर्मियों से उनकी सिनियोरिटी के क्रम से परिचय-पात करवाया।

सदा देर से दफ्तर आनेवाले, किंतु सदा-सर्वदा सभीके काम आनेवाले बिंदा महाराज आज भी देरी से आए। मिस दास ने भी कभी जबाब तलब नहीं किया बिंदा महाराज से। ब्राह्मण, बूढ़ा···। बिंदा महाराज के घर आज ही सौभाग्य से पूजा थी—तिलकुट ले आए हैं। बड़े बाबू ने श्रद्धापूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। बिंदा महराज धन्य हो गए।

बिंदा महराज अब अपनी पुरानी मंझली दीदी, नई असिस्टैंट ब्रांच मैनेजर—मिस दुर्वा दास के नये कमरे में गए।

दुर्वा को तिलकुट बहुत पसन्द है। गया ज़ोन से रिप्रेजेण्टेटिव मानस कुमारजी हर साल तीन वार तिलकुट की टोकरी ले आते हैं।

गुलसन मेहता मिस दुर्वा दास के चेम्वर में आया। सबसे पहले हिंदी में नेम प्लेट बनाने के लिए धन्यवाद दिया। मानो हिंदी का एकमात्र रक्षक इस सीसीएण्डी (काण्टिनेण्टल कॉस्मेटिक्स एण्ड ड्रग्स) में अकेला वही है। दुर्वा ने झुकी नज़रों से मेहता को देखा।

मेहता ने अब नेम प्लेट की तारीफ की, "बहुत बढ़िया बना है।"

"क्या बढ़िया है ? नाम ही गलत लिखा है।"

"एं ?" मेहता ने चेम्बर से बाहर निकलकर नेम प्लेट को फिर पढ़ा, "कहां, क्या गलती है ?—गलती तो कोई नहीं दिखलाई पड़ रही।"

"दुर्वा नहीं, मेरा नाम है—दुर्वा।"

मेहता ने इस गलती पर अपना मुंह संकुचित करके कोट के बटनहोल जैसा बना लिया, "ओ-ओ-ओ ?···खैर, पेट काट देने से काम चल जाएगा।"

मेहता ने अब मिस दुर्वा के नये और विशाल टेबुल की प्रशंसा की, "ग्रैंड है।"

दुर्वा को हठात् कुछ स्मरण हुआ।···टेबुल ? "नया हेड क्लर्क आ गया दफ्तर ? कहां बैठा है ?"

मेहता बोला, "और कहां बैठेंगे ? जहां आप बैठती थीं।"

दुर्वा अचानक इस तरह गंभीर हो गई तो मेहता कान खुजलाने लगा। फिर शनैः-शनैः चेम्बर से बाहर निकल गया···राम जाने क्या बात हुई !

"क्रिग-क्रिग-क्रिग···"

"हुं। जी-जी। हां। येस्सर। अभी आ रही हूं।"

"ट्रिं ! ···बिसनूसिंघ ? ···तुम्हींको मेरे मत्थे मढ़ा गया है ? सुनो —पर्चेज सेक्शन के झा से बोलो—बड़ा साहब बुलाता···।"

दुर्वा दास भी बड़े साहब के चेम्बर में गई। फिर तुरन्त वापस हुई। अभ्यासवश उसके पैर जेनरल सेक्शन की ओर बढ़े। किंतु, बिसनूसिंघ की विस्फारित दंतपंक्ति को देखकर मुड़ी—अपने चेम्बर की ओर।

दुर्वा दास की इस असामयिक और अभावनीय उन्नति से बिसनूसिंघ अत्यधिक प्रसन्न है। रूप कहते हैं इसको कि देखिए तो देखते रह जाइए, मुदा न रूप घटे, न आंख हटे। इसको कहते हैं जनाना का खपसूरती। भगवान ने बिसनूसिंघ की प्रार्थना सुन ली है—मनोकामना ! अब सेवा करने का औसर मिला है—इतने दिनों के बाद।

दुर्वा अपने चेम्बर में आई।

···उंहु। कुछ अच्छा नहीं लगता।। नये फर्नीचरों की गंध, वार्निश की गंध दुर्वा को अच्छी लगती है। किंतु आज क्यों नहीं अच्छी लग रही ? उबकाई क्यों आ रही है ? उसके दोनों हाथ रह-रहकर भटक जाते हैं, मानो। ड्राअर नये ढंग का है, इस मेज़ का ? नया टेबुल ? ठीक है। यही···यह टेबुल नहीं पसंद है दुर्वा को।

अपने दोनों हाथों को दोनों ओर टेबुल पर पसारती है, दुर्वा। मानो आलिंगन कर रही हो, टेबुल का। उसने धीरे से टेबुल के कांच पर—टाप ग्लास पर—अपना दाहिना गाल रखा। तड़फ उठी, मानो बिजली

छू गई।—नहीं, नहीं। नहीं चलेगा। लेकिन ?···

···आठ साल से जिस टेबुल पर काम करती आई है, उसके सिवा और किसी टेबुल के पास बैठने की इच्छा नहीं होती। लगता है, पराये के सामने बैठी हूं।···असंभव !

"ट्रिं !"

"हजोर ?"

"बिसनूसिंघ, मेहता बाबू को···।"

मेहता कान खुजलाता हुआ फुर्ती से आया, "जी ?"

"मिस्टर मेहता ! बड़ा बाबू···नये बाबू···हेड क्लर्क आ गया दफ्तर ? ···नाम कर रहा है टेबुल पर ?"

"टेबुल पर काम ? जी हां।···जी नहीं। अभी तो सिंगेसर को बुलाकर हथौड़े से टेबुल की कोई कांटी ठोकवा···?"

"क्या-या-या ? कांटी ?"

मेहता का व्रण-खचित मुखमण्डल कंटकित हो गया, लगा अचरज से बोला, "जी हां। कांटी माने···कील !"

दुर्वा सिहर उठी दांत पर दांत रखकर—'सि-ई ई !' किन्तु उसने तुरन्त अपने को संभाल लिया, "ठीक है, आप जाइए !"

···जाइए ? मेहता मानो किसी अन्य दुर्वा दास को देख रहा है। ऐसी चंचल, इतनी उतावली तो आज तक कभी नहीं दिखी दुर्वा दास ? कील ! कांटी ! !···गुलसन मेहता के मन में रह-रहकर कांटी गड़ने लगी—ऐसा क्यों ?

मेहता चला गया !

···क्या किया जाए ? वह टेबुल दुर्वा को चाहिए, आज चाहिए, अभी चाहिए। उसके सिवा वह एक क्षण चैन से नहीं बैठ सकती।··· नहीं, नहीं, नहीं ! कुछ नहीं हो सकेगा उसके द्वारा। मेमो पर दस्तखत तक नहीं। और, उधर वह गुप्ता—आते ही आते कील क्यों ठोंकना शुरू किया टेबुल में ? पता नहीं किधर कील ठोंक रहा था ? सी-ई-ई !

शायद जिस कांटी को उसने जानबूझकर ग्राधा ही ठोकवाया था—चिटों की नत्थी टांगने के लिए—उसे तो नहीं ? भगवान जानें ! किंतु यह ग्रन्याय ही नहीं, ग्रपराध है।···क्राइम। उसने क्यों ऐसा किया ?

"ट्रिं !"

"हजोर ?"

बिसनूसिंघ ने नये बड़े बाबू को मिस दास साहब का सलाम दिया !

लगा, इसी क्षण की प्रतीक्षा में—इस प्रकार की राह देख रहे थे सभी। बड़ा बाबू ग्रनुरंजन गुप्ता भी ! सभी ने एक-दूसरे को देखा।

मेहता धीरे से उठकर बड़े बाबू के पास गया। धीरे से गुनगुनाकर बोला, "ई टेबुल बड़-सुगनिया है। बड़ा बाबू।"

मेहता जब ग्रात्मीयता-भरी बोली बोलता है, तो पहली पंक्ति मगही में ग्रवश्य बोलेगा। उसने पूछा, "सर ! मकान तो मिल गया। या···? ठीक है, किसी तरह की कोई भी ग्रसुविधा हो—मेहता को याद कीजिए। हमारा फर्ज़ है, सर। हमारा जन्म इसी शहर में—सिटी-एरिया में हुग्रा है। जी ही-ही-ही !!"

बड़ा बाबू, ग्रर्थात् ग्रनुरंजन गुप्ता हाल से बाहर चला गया तो सेन ने पूछा, "ग्रच्छा भाय मेटा। तुम भी खूब है भाय। कभी बोलता है हियां पर जन्म हुग्रा है हमारा। उस दिन बड़ा साब को बोला—हुंग्रा पांजाब में चांदनी-ना-चानी चौक में हुग्रा। तुम्हारा जन्म केतना जाग्गा में हुग्रा भाय मेटा ?"

हाल में एक सम्मिलित हंसी गूंजी। किंतु मेहता ने सदा की भांति सेन की चोट का ही रुख मोड़ दिया, "समह्वेर माई डियर फ्रेंड्स—कहीं न कहीं कोई कील ज़रूर गड़ रही है।···मालूम तो सभीको है कि पिछले साल कलकत्ता में—एक ही साथ ट्रेनिंग में थे, दोनों। मिस्टर ए० गुप्ता एण्ड मिस दुर्वा दास। एक सफलीभूत होकर 'एबीएम' हो गई—दूसरा बड़ा का बड़ा बाबू ही रहा—पोर हाइलैंडर नौजवान, ग्रावर न्यू हेड क्लर्क !"

मेहता के इस लेक्चर के बाद दफ्तर के कामकाज में लोगों ने अपने को डुबाने की चेष्टा शुरू की। नये बड़े बाबू की निगाह में आज ही न चढ़ जाए कोई—इसलिए कृत्रिम मनोयोगपूर्वक काम चालू हुआ।

टाइपराइटरों की गति, कॉलिंग-बेल की पुकार, दराज़ों को खोलने और बन्द करने की आवाज़ें—सारे वातावरण में एक बनावट, एक मिलावट, कपट !

"सिंगेसर।...कहां भाई ? ज़रा पानी पिलाओ।"

सिंगेसर सब समझता है। बहुत-बहुत बाबुओं को उसने पानी पिलाया है, आज तक। असल प्यास, नकल प्यास और नज़र प्यास—सभी प्यास को वह पहचानता है। जहां एक बाबू ने पानी मांगा, सभी बाबुओं की आत्मा मानो प्यास से ऐंठने लगती है।

"सिंगसेर ! कहां चला जाता है ? किसीने कहीं भेजा है ?"

सिंगसेर बड़बड़ाता हुआ आया, "हजुर। पानी छूके फैलवा हम ना छूएब। भींगल हाथे कौनो कागज ना धरब।...मिस साहब बहुत बिगड़ेली...!"

महीने के अंतिम सप्ताह में कई बाबुओं को सिंगेसर से कर्ज लेने की ज़रूरत पड़ जाती है, दस-पांच। इसलिए, सिंगेसर की झल्लाहट पर कोई ध्यान नहीं देते, शायद। उसके विरुद्ध वक्तव्य अंग्रेज़ी में हो या किसी अन्य भारतीय भाषा में—वह समझ लेता है। अपनी भाषा ठेठ भोजपुरी के अलावा कोई भाषा सीखने-बोलने की उसकी इच्छा ही नहीं हुई ! चाहे बंगाल के बनर्जी बाबू बोलें अथवा मराठा घोंसले साहब से बातचीत करे, सिंगेसर 'जातानी-खातानी' ही बोलता है।

मेहता के मन में कांटी खुच-खुच चुभती है—क्या बात है ? वह और बैठा नहीं रह सकता !...एक रेलवे रसीद के बारे में पूछने योग्य प्रश्न गढ़ रहा है वह।...मिल गया सवाल उसको। वह फायल लेकर 'एवीएम' के चेम्बर में पूछते हुए घुस गया, "मे आई कमिनसा...।"

किंतु, मिस दुर्गा दास ने पदोचित गंभीरतापूर्वक कहा "बाद में

आइए !"

...मेहता ने देखा—नये बड़े बाबू के ओठों पर एक अद्भुत मुस्कराहट अंकित है ! और दुर्वा दास के चेहरे पर एक अभूतपूर्व हलचल ? ...मन में कील दो-तीन बार लगातार गड़ी, मेहता के ! ! वह फिर अनिच्छापूर्वक चेम्बर से बाहर निकल आया ।

तब, मिस दास ने पुनः वार्तालाप प्रारम्भ किया ।

"आपको घर मिल गया ? अच्छा ? गुड लक, यह बहुत बड़ा प्राब्लेम है पटना का..."

"हर जगह यही हालत है। मेरे एक परिचित यहां रेलवे में हैं—उन्हींकी कृपा से एक अच्छा घर मिल गया है ।...चिरैयाटांड़ पुल के पार।" अनुरंजन ने बताया ।

मिस दास के अंदर बहुत देर तक संघर्ष छिड़ा रहा । सामने बैठे युवक से यह उसकी पहली मुलाकात नहीं । एक ही साथ ट्रेनिंग में थी पिछले साल ।...अनुरंजन के नोट्स आज भी उसके पास हैं ।...फिर, वह पचीस पृष्ठ का व्यक्तिगत निबंध—ट्रेनिंग से मैंने क्या प्राप्त किया—सरस रोचक साहित्यिक ढंग से लिखने की शर्त थी। उसने अनुरंजन से अनुनय किया था ।...टी सेण्टर में बैठकर चाय पी है। आमने-सामने बैठकर ।...स्टार में शंभूमित्रा का 'रक्त करबी' देख चुकी है, अगल-बगल बैठकर। दक्षिणेश्वर, बेलुड़...। नहीं, उन स्मृतियों को पोंछ देना होगा। चॉक से अंकित भूत क्षणों को 'परिष्कार' कर देना होगा—मन-पटल से। मन, एक काला बोर्ड !

अनुरंजन गुप्ता ने बहुत पहले ही अपने को संयत कर लिया है। यहां आने से पूर्व ही वह आंधी-तूफान झेल चुका है। उसने समझौता कर लिया है । बोर्ड ने असिस्टैंट ब्रांच मैनेजर के काबिल नहीं समझा, उसका दुर्भाग्य ! वह क्या करे ? किंतु तुरंत पटना ट्रांसफर-आर्डर पाकर वह उद्विग्न अवश्य हुआ था। मन-प्राण से काम करने की अच्छी सज़ा

उसे मिली—उसने ग्रहण किया। वह दृढ़ होकर अपना कर्तव्य करेगा।···

किंतु, अभी-अभी कुछ क्षण पूर्व उसका मन फिर डगमगा गया था ···नमस्कार का झिझकता हुआ प्रतिनमस्कार, हाथ उठाने का ढंग, आंखों की असाधारण नमनीयता—सब कुछ देख-सुनकर उसने समझ लिया था, मिस दास के मन में कुछ हो रहा है। उसने कुर्सी से उठने का उपक्रम किया।

दुर्वा बोली, "सुनिए ! मैंने बुलाया था···।"

अनुरंजन फिर कुर्सी पर स्थिर होकर बैठ गया। कुछ क्षण चुप रहने के बाद अनुरंजन ने पूछा, "जी ! कहिए।"

"वह टेबुल···आइ मिन···वह टेबुल जिसपर फिलहाल आप बैठे हैं ···वहां कल तक मैं बैठती थी...वह···वह···।"

"जी। वह ? क्या है उस टेबुल में ?"

"वह मेरा टेबुल है···"

"आपका पर्सनल ?"

"जी नहीं। मैंने उसपर आठ साल तक बैठकर काम किया है।"

अनुरंजन ने कहा, "जी, मालूम है। किंतु, मुझे कुर्सी नई दी गई है।"

दुर्वा गंभीर हो गई। अनुरंजन का यह कथन अश्लील-सा लगा।··· कुर्सी बदलने की बात क्यों बोला ? उसने अब मन के सारे संकोच को दूर कर दिया। बोली, "वह टेबुल मुझे—यहां—मेरे चेम्बर में भेज दीजिए।"

"यहां भेज दूंगा ?···और यह टेबुल वहां जाएगा ? लेकिन, वहां इतनी जगह कहां है ?"

"नहीं। यह टेबुल भी यहीं रहेगा। वह भी।"

"तो, मैं वहां किस टेबुल पर···?"

अधीरतापूर्वक दुर्वा दास बोली, "मैं स्टोर बाबू को बुलाती हूं। आपको नया टेबुल मिलेगा।"

अनुरंजन ने बिना कुछ सोचे-समझे जवाब दिया, "ठीक है। नया

टेबुल आ जाए, पहले···।"

"पहले-पीछे क्या ? अभी भेज दीजिए।"

दुर्वा दास फिर सोच में डूब गई। अनुरंजन ने उसके गालों पर रंगों को इतनी शीघ्रता से चढ़ते-उतरते नहीं देखा था। न स्टार में, न ट्राम में, न बेलुड़ में—कहीं नहीं !

अनुरंजन उठा। दुर्वा दास का ध्यान भंग हुआ। मानो, अपने-आप से तर्क करती हुई बड़बड़ाई, "उसके बिना मुझसे कोई काम नहीं होगा ···किस्सुई हॅबे ना आमार दारा।"

अनुरंजन अपने असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर के चेम्बर से बाहर निकल आया।

अपने जेनरल सेक्शन में घुसते ही उसे लगा—सेक्शन के हर टेबुल के पास, मानव काया में जड़ित अक्षिगोलकों में कौतूहल, जिज्ञासा और अचरज मिलजुलकर झिलमिला रहे हैं ! छोटी-छोटी बल्ब जैसी दस जोड़ी जलती हुई आँखें !

ट्रान्सपोर्ट विभाग का दुलाल सेन—जिसे दफ्तर के सहकर्मी ट्रान्स-पोटेसन कहते हैं—'मुराद' सिगरेट पीता है। बड़े बाबू को आफर करता हुआ बोला सेन, "सार ! डिविज़न ऑफ वर्क का फैसला हो गया क्या ?"

अनुरंजन 'मुराद' सिगरेट का स्वाद लेने लगा, कोई जवाब नहीं मिला सेन को !

सभी जलती आंखों ने बड़े बाबू के चेहरे पर आने-जानेवाले भावों को परखने की चेष्टा की—अपने-अपने कोण से।

बिंदा महाराज ने पनडब्बा बढ़ाया।···बड़ा बाबू पान खाते वक्त सिगरेट नहीं पीते।

गुलसन मेहता ने तुरन्त ताईद की, बहुत अच्छा करते हैं, सर ! पान खाते वक्त सिगरेट पीनेवाले की सिगरेट की थूथनी अजीब···लाल सी···अजीब···।"

"···क्रि—हजोर !"

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

सिंगेसर के साथ सभी बाबुओं ने दुहराया, "सिंगेसर राम !"

"देखो, सिंगेसर राम । यह टेबुल जाएगा—एबीएम—माने मिस दास साहब के चेम्बर में···?"

बाबुओं की मंडली एक स्वर से बोली, "मिस दास साहेब के चेम्बर में ? क्यों—यों—यों ?"

सबसे बाद में सिंगेसर ने पूछा, "से काहे हजुर ?"

"वह कहती है···।"

"क्या कहती है सर ?" मेहता अब अपनी कुर्सी पर चुपचाप बैठा कैसे रह सकता है ? "क्यों सर ? आप वहीं बैठिएगा ?"

अनुरंजन की भृकुटी तनिक बंकिम हुई। मेहता ने समझ लिया। वह बोला, "ओ ! मैं समझ गया सर !"

अनुरंजन ने समझाया, "इसमें समझने-बूझने की कोई बड़ी बात नहीं। वह किसी दूसरे टेबुल पर काम नहीं कर सकती ।"

"तो, दे दें न अपना बड़ा टेबुल ?"

"वह भी नहीं देगी ? दोनों टेबुल रखेगी ?"

"स्टोर में नया टेबुल कहां से आवेगा ?"

"ज़रा स्टोर डायल करो, झा ।"

मेहता स्टोर-क्लर्क से पूछता है, "हां, बनर्जी दादा सुनिए। स्टोर में कोई सेक्रेटेरिएट टेबुल···टेबुल नया कोई है ? एं ? है ?···दिल्लगी छोड़िए दादा। बड़ा बाबू के लिए। नहीं ?"

मेहता के चेहरे पर खुजलाहट हुई—किसी व्रण में।

सेन ने हंसकर पूछा, "क्या बोला बनर्जी दादा ?"

"पगलू हैं यह बनर्जी दादा भी। कह रहे थे कि अभी शीशम का पेड़ कटावेगा, चिराई-फड़ाई होगी, तब जाकर टेबुल होता है। गाछ में फलता नहीं। हुं !"

"क्रिंग-क्रिंग-क्रिंग···!"

"यः, गुप्ता बोल रहा हूं। जी ? फिर मैं किस टेबुल पर ! स्टोर में नहीं है। अजीब बात है। काम तो मुझे भी करना है। जी ? लेकिन, मैं बड़े साहब से क्यों कहूं ? आप ही कहें।···। आइ डोंट थिं···खट्।"

टेलीफोन वार्ता-काल सभी बाबुओं के मुखड़े पर उत्तेजना और—प्रसन्नता की लहरें दौड़ती रहीं। इसके बाद प्रत्येक बाबू ने अपने मन और मुंह के उपयुक्त मुद्रा बनाई।

बिंदा महाराज कहते हैं, "टेबुल में क्या है ऐसा ?"

मेहता ने ऐसा मुंह बनाया मानो दुर्बा दास ने उसे छड़ी से पीटा है, अभी-अभी। सेन बोला, "साला, काठ का चीज का वास्ते इतना दरद और मानुस का वास्ते कुछ नेंही—भीतर में ?"

अनुरंजन चुप रहा। नगीना प्रसाद की आदत पर उसकी दृष्टि गई। पृष्ठ उलटते-उलटते जीभ से उंगलियां चिपकीं। नगीना प्रसाद पन्नों को उलटते हुए बोला, "बहुत-बहुत स्वार्थीजीव देखा है। लेकिन ऐसा नहीं···चपाक्-चट-चट।"

बनर्जी दादा—स्टोर बाबू ने आकर नये बड़े बाबू से परिचय किया। बोला, "देखिए, आप हमारे बड़े बाबू हैं। मगर उमेर में हम आपसे बड़ा है ! टेबुल आप हरगिज़ मत दीजिए साहब।"

"बहुत छोटे हृदय की है।"

"दिल में दया-माया का नाम नहीं।"

"किसी की नौकरी खाते समय भी ऐसी ही हंसी उसके चेहरे पर रहती है।"

"आखिर, आदमियत भी कोई चीज़ है।"

"भगवान ने औरत बना के क्यों भेजा इसे ?"

"जुल्में है कि ! एतना रूप मुफ्ते चला गया।"

अनुरंजन सुन रहा है, एक-एक मंतव्य। किंतु कोई दुर्बा के चरित्र पर उंगली नहीं उठाता। निष्ठुर, हृदयहीन, स्वार्थी सब कुछ कह रहे हैं लोग। लेकिन किसीने यह नहीं कहा कि रूप-यौवन देकर उसने

उन्नति खरीदी है। उंहु। कोई नहीं कह सकता।

मेहता बोला, "ऐसी ज़िद तो नहीं करनी चाहिए। अच्छा लेट मि सी...।"

मेहता दफ्तर से बाहर निकला। झा ने सेन के कान में कहा, "साला चला अब 'गो-विटविनी' करने।"

सेन ने आंख टीपकर संकेत किया, "बेटा, देखना खेला। खेला तो आभी आरम्भ हुआ।"

मेहता लौट आया। दुर्वा दास को इतना उत्तेजित कभी नहीं देखा मेहता ने। किसीने भी नहीं। रूप-पूजक बिसनूसिंघ पियन ने भी नहीं।

बिसनूसिंघ पिछले सात साल से मिस दास की बिना पैसे की गुलामी करने का अवसर ढूढ़ रहा था। भगवान ने इतने दिनों के बाद नज़र फेरी। आज ही वह निवेदन करना चाहता था कि घर पर भी उससे काम लिया जाए। बिल्कुल काम करेगा बिसनूसिंघ। पैर में जूती भी पहना देगा। लेकिन, आज तो ऐसा मन उचाट है मिस साहेब का कि एक पल चैन से बैठती ही नहीं।

बिंदा महाराज बड़े साहब से पूछने गए कि इस पूर्णिमा की रात में भी पूजा कराने के लिए कोई पुरोहित चाहिए क्या? बड़े साहब मिस दास से कह रहे थे, "नहीं। यह कैसी लड़कपन-भरी बातें करती हैं, आप? आप दो-दो टेबुल रखें और...आखिर, वह कहां काम करेगा? आखिर उस टेबुल में क्या है?"

मिर्स दुर्वा अनुनय-भरे स्वर में बोली, "सर, वह टेबुल तो मुझे चाहिए ही। चाहे जैसे भी मिले। मैं नया टेबुल दे रही हूं अपना।"

तब बड़े साहब ने बात बदल दी, "उंहु! वह टेबुल एबीएम के लिए है। हेड क्लर्क को नहीं दिया जा सकता। और आप देने-लेनेवाली कौन होती हैं।"

बड़े साहब ने जान-बूझकर रुख कड़ा किया।

"सर, तब मैं कोई काम नहीं कर सकूंगी।"

बड़े साहब के चेहरे पर अब झुंझलाहट स्पष्ट हो गई।

इसके पहले कभी दुर्गा दास ने ऐसी झिड़की नहीं सुनी थी—किसी भी बड़े साहब की। और न देखी थी ऐसी झुंझलाहट। वह बोली, "सर सेण्टिमेण्टल कहिए या पागलपन। मैं किसीको उस टेबुल पर नहीं बैठने दूंगी। नहीं···।"

बड़े साहब 'घर बैठे मनोविज्ञान का पंडित बनिए' सिरीज़ के स्थायी ग्राहक हैं। मिस दास की बातों में कोई मनोवैज्ञानिक उलझन है—ज़रूर? बोले, "मिस दास, मेरी बुद्धि में कोई बात नहीं आ रही। मान लो, तुम्हारा ट्रांसफर हो गया कलकत्ता। तो क्या कलकत्ता ले जाओगी ढो-कर···?"

"जी? चाहूंगी अवश्य।"

"और मान लो···"

"नौकरी नहीं रहे? तब कम्पनी से अनुरोध करूंगी कि यह टेबुल मेरे हाथ बेच दे।"

"टेरिबल!···ठीक है, आप जाइए। मैं हेड क्लर्क को बुलाता हूं।"

बड़े साहब से अनुरंजन ने पूछा, "आप ही बतलाइए, मैं क्या करूं?"

बड़े साहब ने मिस दास से फोन पर कहा, "आप व्यर्थ में छोटी-सी बात को लेकर एक समस्या पैदा कर रही हैं। आज नये पद का काम ही बखेड़ों से शुरू कर रही हैं आप।"

अनुरंजन गुप्ता को बिसनूसिंघ ने फिर सलाम लाकर दिया—मिस दुर्गा दास का।

इस बार अनुरंजन ने दुर्गा दास के सुन्दर चेहरे पर अबला नारी की बेबसी देखी। थकी, कुढ़ी, अस्त-व्यस्त कपड़े, सरकी हुई साड़ी—सामने से। अनुरंजन को याद आई—दक्षिणेश्वर और बेलुड़ से लौटते समय दुर्गा इसी तरह थकी-कुढ़ी थी!

"मिस्टर गुप्ता।"

"हुक्म।"

"हुक्म नहीं। आप वह टेबुल मुझे दे दें।"

जेनरल सेक्शन में एक बाबू ने तलहथी पर उंगली घुमाकर कहा, "लगा है लकड़पेंच!"

मेहता ने स्टोर बाबू—बनर्जी दादा से 'फोना-फोनी' की, "हां, दादा। आप वही बात बोलिए कि शीशम का पेड़ कटेगा···!"

सभी बाबू प्रसन्न हैं।···क्राइसिस, प्राबलेम अपनी जगह पर जस के तस और घड़ी की सुई आगे बढ़ती गई—एक, दो, तीन, चार, पांच!!

दूसरे दिन सभीने अचरज से सुना, मिस दास अचानक बीमार हो गई है। एक सप्ताह की छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र भेजा है, उसने!

पांच ही दिनों में अनुरंजन ने अपने दफ्तर के प्रत्येक जीव को थोड़ा-बहुत पहचान लिया है। एक से एक कामचोर पड़े हुए हैं यहां। परले सिरे का चापलूस गुलसन मेहता, जिसे पोलसन मेहता कहते हैं।

जो भी हो, मिस दास काम करना जानती है। काम से उसे प्रीत भी है। जिस फाइल में हाथ लगाती है, वह—आइने की तरह साफ! कहीं कोई भूल-चूक नहीं, उलझन नहीं। लेकिन टेबुल के लिए उसकी ज़िद? क्या कहा जाए इसको! आखिर बात तो होगी कोई?

मेहता ने कहा, "सर, मैं जानता हूं कारण।"

अनुरंजन ने पूछा, "क्या कारण है?"

मेहता अनुरंजन के पास गया। फिर मद्धिम आवाज़ में बोला, "मिस दास की छाती पर—ठीक कॉलरबोन के नीचे—एक रुपया-भर गोल—दाद का चकत्ता है। टेबुल के इस कोने से वह समय-असमय खुजलाती···।"

"मेहता साहब! आप अपने 'एबीएम' के संबंध में ऐसी बे-बात की बात मेरे सामने न बोलें तो अच्छा।"

सर्वांगसुन्दरी दुर्बा की देह में दाद? धेत्त, उसने मेहता को अच्छी तरह पहचाना है। दुनिया-भर की बात कोई इससे पूछे।···सेन ने कल

कहा, "एक दिन वड़ा साब बोला—मेटा ! गाधा कैसा माफिक बोलता है। बास—मेटा झट से आंकू-आंकू बोलने लगा। बलिहारी बाबा मेटा। तुम्हारी जुड़ी एई भूभारत में नेंहीं !"

ऐसे अवसरों पर मेहता सड़ी मछली, भूखा बंगाली और पान्ता भात आदि कहकर सेन को काटने की चेष्टा करता है।

उस दिन दफ्तर के बाद मेहता दौड़ा गया मिस दुर्वा के डेरे पर। दुर्वा बाहर लान में उदास बैठी थी। मेहता ताज़ी कुत्ते के डर से फाटक के अंदर नहीं गया। बाहर से ही उसने दुर्वा को संवाद दिया, "आज डी० डी० टी० पाउडर और गेमेक्सिन—दोनों मिलाकर टेबुल को डिस-इन्फेक्ट किया गया है।"

डीडीटी-ई-ई-ई ! लगा अचेत हो गई दुर्वा दास संवाद सुनकर।

सातवें दिन मालूम हुआ, मिस दास ने और भी चार दिन की छुट्टी बढ़ाने के लिए आवेदन-पत्र भेजा है।···

अनुरंजन गुप्ता ने—बड़े साहब के आदेशानुसार—असिस्टैंट ब्रांच मैनेजर के ज़िम्मे नियमानुसार दिए जानेवाले कामों का एक लेखा-जोखा तैयार किया। मिस दास की अनुपस्थिति में उसने कुछ काम भी कर दिया है।

उस दिन फिर टेबुल की चर्चा छिड़ी।

सेन ने पूछा, "टेबुल पुंलिग है क्या ?···इसी वास्ते ! हा-हा-हा-हा!"

मिस दास की बढ़ाई हुई छुट्टी भी कटी एक-एक कर तीन दिन !

उस दिन दफ्तर से लौटकर अनुरंजन ने कहा, "मां, मैं जल्दी से नहा लूं। चलो, आज तुमको आश्रम दिखला लाऊं यहां का—रामकृष्ण आश्रम। प्रवचन है किसी स्वामी जी का वहां आज।"

अनुरंजन बाथरूम से निकला। मां ने सूचना दी, "एक महिला मिलने आई ।"

"महिला ?" अनुरंजन अचरज से देखता ही रह गया—अरे यह तो दुर्वा दास है। मां कहती है, महिला ! आधुनिक बांह-कट ब्लाउज़ और कांजीवरम या—वरम साड़ी का यह मैच—अखबारों में रोज प्रकाशित होनेवाली अंतर्कंचुकी कंपनी की उस महिला की छाया—क्या हो गया है आज दुर्वा दास को ?

"नमस्कार !···अब कैसा है आपका जी, क्या हुआ था ?"

दुर्वा चुप रही। अनुरंजन की मां दो प्याली चाय दे गई। अनुरंजन ने परिचय करवाया, "मां, आप ही हमारे एबीएम—मिस दुर्वा दास ! और···मेरी मां !"

मां रसोई में चली गई।

"रसोई आपकी मां स्वयं पकाती हैं, अभी भी ?"

"जी, मेरा सौभाग्य ! मां के हाथ का···"

"जी नहीं। इस माने में मैं भी सौभाग्यशालिनी हूं।"

"आप हर माने में सौभाग्यवती हैं।"

अनुरंजन ने पहचाना, यह कलकत्तावाली दुर्वा दास ही है। परिधान-प्रसाधन तनिक उग्र है। यही फर्क।

"तब ? कैसा लग रहा है पटना ?"

"अच्छी जगह है।"

"खाक अच्छी है। कलक···बम्बई से भी अच्छी ?"

कलकत्ता कहते समय आंखें आतंकित क्यों हुईं, दुर्वा की ? फिर कुछ क्षणों की चुप्पी।

"तो कल आप दफ्तर आ रही हैं न !"

"कल ?" सपने से जगी दुर्वा मानो, "कल ? मेरा आना आपपर··· तुमपर निर्भर है।"

"मुझपर ?"

"हां।···तुमपर। अनुरंजन बाबू, तुमपर। मैंने कहा न, उस टेबुल-पर किसीका बैठना मुझे सह्य नहीं होगा। उसके बिना···जानते हो ?

इस बीच हर रात मैंने सपने में टेबुल को देखा। देखा, वह टेबुल मुझे मिल गया है। फिर छीन लिया गया है। बहुत बड़ा युद्ध हो गया—मार-काट। दंगे।···टेबुल में आग लगा दी गई है। मेरा टेबुल जल रहा है, धू-धू कर।···कितने सपने ऐसे ही भयावने।"

"मिस दास, सभीको अचरज हो रहा है···"

"सो मैं जानती हूं। मैं सभीका कौतूहल मिटाने को बाध्य नहीं हूं। तुमसे कहूं—कोई स्त्री किसी अन्य पुरुष के पास पांव फैलाकर, हाथ पसारकर, जी खोलकर बैठ सकती है भला ? बोलो।"

अनुरंजन का मुंह नजाने क्यों विकृत हो गया, किंचित् !

दुर्बा अनुनय-भरे स्वर में बोली, "गुप्ता, तुम तो ऐसे नहीं थे ? इतने निष्ठुर तुम हुए कि डी० डी० टी० छिड़कने में भी तुम्हारी आत्मा कुंठित नहीं हुई ? तुम ज़ोर-ज़ोर से दराजों को खोलते, बंद करते हो ? सेन उसपर घुस्सा मारता है ? तुमने कील ठोंक दी ? क्यों ? क्यों गुप्ता ?"

अनुरंजन ने देखा, बातें करते समय दुर्बा की मदमाती आंखें और भी मधु ढालती हैं। उंगलियां छंदबद्ध गति से नाचती हैं।

दुर्बा उठी। खिड़की पर गई। नाक झाड़कर नासा-रंध्रों का 'परिष्कार' किया। हठात्, कलकत्तेवाली दुर्बा लौट आई। कलकत्तेवाली दुर्बा, जो डकार ले, दांत से नाखून कुतरे अथवा नाक की सर्दी झाड़े, मुंह विकृत करके भयभीत हो—प्रत्येक अवस्था में सुन्दरी ही दीखती है।···नब नब रूपे देखि तोमाय क्षणे क्षणे ! !

"तुम···।"

अनुरंजन ने सचेत करने के सुर में कहा, "क्षमा करें मिस दास। आप मुझे 'तुम' कहती हैं। किंतु मैं आपको तुम नहीं कह सकता।"

"मैं-तुम ? मैं तुमको 'तुम' कहती हूं ?···नहीं-नहीं, मैं तुमको अब 'आप' ही कहूंगी। हुआ न ? तुम भी 'तुम' कहो न ? क्यों नहीं कह सकते ? सिलि···। सुनो गुप्ता, टेबुल की समस्या पर सोच-विचार किया

है मैंने—सात दिनों तक। बड़े साहब का कहना है—नया टेबुल तुमको नहीं दिया जा सकता।···देखो, गुप्ता। बस एक रास्ता है। मुझे उम्मीद है, तुम अब ज़िद नहीं पकड़ोगे।"

"ज़िद ? मैंने पकड़ी है मिस दास ?"

"क्यों ! सिर्फ दुर्बा नहीं कह सकते ? अच्छी बात। अब तुमने नाहीं की तो मैं समझूंगी। तुम चाहते हो मैं नौकरी छोड़ दूं। इतने बड़े परिवार का सारा बोझ मेरे ही सिर है। मालूम है तुमको ? नौकरी छोड़ने पर भी—उस टेबुल के बिना कैसे जी सकूंगी मैं ?"

"मिस दास, आप मुझे बताइए, आपने क्या सोचा है ?"

"नहीं। पहले वचन दो, तुम मानोगे ?"

ठीक, इसी तरह दुर्बा ने पिछले साल वचन लिया था, बोलो, मेरी सहायता करोगे न ? अनुरंजन ने पहले ही दे दिया वचन, "मानूंगा। कहिए।"

"सच ? देखो, काम का जो सिलसिला है, तुमको अधिक समय मेरे चेम्बर में ही रहना पड़ेगा। याद है, तुम्हींने तो कहा था कि यह नया स्कीम 'एमबीएम' वाला क्या है—सीनियर हेडक्लर्क माने असिस्टैंट ब्रांच मैनेजर। तो, क्यों न तुम मेरे चेम्बर में ही बैठते ? बात यह है कि टेबुल मेरे चेम्बर में रहेगा, मेरी आंखों के सामने रहेगा तो तुम ज़ोर-ज़ोर से दराजों को खोल-बंद नहीं करोगे। हथौड़े से कील नहीं ठोकोगे। मेरी उपस्थिति में कम से कम··· ।"

अनुरंजन ने पहले ही वचन दे दिया था। दुर्बा को विश्वास नहीं हुआ, किन्तु। उसने बार-बार पूछा, "बोलो, तुमको कोई एतराज़ है ? सच ? कल फिर मुकर तो नहीं जाओगे ? किसीकी बात में पड़कर 'नट' तो नहीं जाओगे ? वह गुलशन मेहता बड़ा पाजी जीव है। बोलो···।"

अन्तिम वाक्य कहते समय दुर्बा ने अनुरंजन का हाथ पकड़ लिया, "बोलो।"

अनुरंजन की मां ने पूछा, "अब तो आश्रम नहीं जा सकोगे भैया। पीढ़ी डाल दूं चौके में ?"

दुर्वा असंख्य धन्यवाद देने की मुद्रा में बोली, "तो मैं चली अभी। हैं ? कल दस बजे के पहले ही आओ न ! बड़े साहब साढ़े नौ बजे ही आ जाते हैं।···बाद में सभी आ जाएंगे तो फिर टेबुल खींच-तान···"

"नमस्कार।"

अनुरंजन को लगा, दुर्वा उसे चाबुक से पीटकर चली गई, सपाक् ! सपाक् !

दूसरे दिन दुर्वा नौ बजकर पच्चीस मिनट पर ही दफ्तर आ गई।

बड़े साहब की गाड़ी साढ़े नौ बजे पोर्टिको में आकर लगी। दुर्वा ने आगे बढ़कर नमस्कार किया।

"कहिए मिस दास, अब कैसी हैं ?"

"अब ठीक है सर।" उत्फुल्ल दुर्वा बोली।

साहब अवाक् हुए मन ही मन। प्रकट रूप से मुस्कराते रहे।

दुर्वा बड़े साहब के साथ उनके चेम्बर में गई। बड़े साहब का पियन जब तक चेम्बर में रहा, वह चुप रही। उसके बाहर जाने के बाद दुर्वा ने साहब के मूड को परखने की चेष्टा की। फिर निवेदन करने लगी, "सर ! टेबुल की समस्या···।"

बड़े साहब उबल पड़े, "सुनो भाई, मिस दास। मैं अब इस समस्या या प्राबलेम के बारे में एक शब्द नहीं सुनना चाहता। आप लोग टेबुल-कुर्सी के लिए बच्चों की लड़ाई करेंगे तो मुझे बाध्य होकर जीएम को लिखना पड़ेगा।···फनी।"

"नहीं सर, अब कोई प्राबलेम ही नहीं। सब तय हो गया।"

दुर्वा ने समस्या का हल विस्तारपूर्वक सुझाया। उसने यह भी कहा कि कल शाम को अनुरंजन के डेरे पर जाकर अनुरंजन को मना आई है।

बड़े साहब ने इस फार्मूले पर सोचा, ठीक है। देखा जाए, कहां तक और···यह अनुरंजन गुप्ता—हेड आफिसर से लेकर—बार्ड के सभी सदस्य—जिसकी तारीफ में पुल बांध चुके हैं यही है वह कर्मठ पुरुष ? रीढ़हीन

प्राणी ?…ठीक है, उधर जेनरल सेक्शन में मेहता को अवसर मिलेगा… डोसालय मेहता। हैण्डी एण्ड हेल्पफुल मेहता और इस सुपुरुष अनुरंजन में क्या फर्क…? "ठीक है। किंतु गुप्ता को यदि कोई एतराज़ हो ?"

"उसे क्या एतराज़ होगा ? सर, वह आ ही रहा है।"

दस बजे के पहले ही दुर्वा दास अपना प्रिय टेबुल ले आई अपने चेम्बर में। टेबुल लाते समय वह कुलियों के साथ थी—कहीं ठेस न लग जाए। आखिर कहां तक बचावे कोई ? कांच का तो नहीं टेबुल। ज़रा-सी ठेस लगी, चीख उठी दुर्वा दास।

चेम्बर के एक हिस्से में टेबुल को प्रतिष्ठित किया गया। बिसनूसिंघ ज़ोर-ज़ोर से झाड़न मारकर धूल झाड़ने लगा। चिल्ला उठी दुर्वा दास, "ए–ए–जंगली ! इस तरह ज़ोर-ज़ोर से क्यों मारता है ? लाओ डस्टर।"

दुर्वा ने अपने हाथों टेबुल की धूल को झाड़ा—हौले-हौले।… हाय रे ! एक पखवाड़े में ही तुम्हारी यह दुर्दशा ? हः, अब जाकर जान में जान आई है। मैंने समझा था, अब नहीं पाऊंगी तुमको। लाल रोशनाई गिरी कैसे ?

टेबुल झाड़-पोंछकर उसने घड़ी देखी। दस बज रहे हैं। गुप्ता आता ही होगा। उसने दरवाज़े की ओर देखा हैण्डलूम के पर्दे पर भरत-नाट्य नृत्य की मुद्रा में खड़ी औरतों की पांति। उसने, दोनों बांहों को दोनों ओर पसारकर सदा की भांति टेबुल के टाप-ग्लास पर अपना एक गाल रखा…ओ हो ! एक पखवारे के बाद यह स्पर्श-सुख…सी-ई-ई… फिर दूसरा गाल…सी-ई-ई…रोम-रोम पुलक रहे ! पुलक…

"क्रि। हजोर !"

बिसनूसिंघ अन्दर आया। दुर्वा ने झटपट अपने को संभाला, "कुछ नहीं बाहर जाओ। कॉलिंग बेल आप ही बज उठा कैसे ?"

बड़े साहब ने देखा—पर्दे के उस पार दो पांव। अनुरंजन गुप्ता आ रहा है। साहब ने एक मोटा फाइल खोलकर अपने को डाल दिया।

अनुरंजन आकर खड़ा रहा। बड़े साहब का ध्यान भंग नहीं हुआ,

"सर, क्या मैं बैठ सकता हूं—थोड़ी देर ?"

"उं ?–हूं। बैठो। क्या है ?"

आवेदन-पत्र। एक नहीं, दो ?

"क्या है ?" एक में डेढ़ महीने की छुट्टी की प्रार्थना···मां प्रयाग जाएगी कल्पवास करने···एकलौता बेटा है वह। इसलिए साथ जाना आवश्यक···दूसरा आवेदन-पत्र है कि···पटने का जलवायु स्वास्थ्य के प्रतिकूल···उसे या तो हेड आफिस कलकत्ता भेज दिया जाए या फिर बम्बई। अन्यथा···अन्यथा। यह आवेदन-पत्र ही त्याग-पत्र ?

"देखो गुप्ता, भावावेश में···।"

"नहीं सर, मैंने बहुत सोच-समझकर देख लिया है। मेरी मां भी नहीं चाहती।"

बड़े साहब ने आवेदन-पत्र की भाषा और अनुरंजन के चेहरे पर अंकित भाव को पढ़कर समझ लिया, यह सच कहता है। इसने बहुत सोच-समझकर फैसला किया है।···लोग झूठ नहीं कहते थे ! अनुरंजन गुप्ता···

अनुरंजन ने आज की छुट्टी मांगी—मौखिक ! मिल गई।

हर सेक्शन में यह खबर फैली—फैलती गई।—

एकसाथ बीस टाइपराइटरों की खटपटाहट बंद हो गई।

सभी बाबुओं ने एक ही साथ पानी मांगा, "पानी !"

"आ ?"

"वही हुआ—जो मिस दास चाहती थी।"

"त्रियाचरित्रम्···।"

"गजब···अजब···औरत ?"

"गुप्ता साहब चले गए ?"

दुर्वा को भी खबर मिली।

कुछ देर तक सन्न रह गई। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सुफेद मुखमंडल !···त्याग-पत्र ? छुट्टी ? वह आया नहीं यहां ? लेकिन, उसने

तो वचन दिया था ?

उसके चेहरे पर तुरन्त लाली लौट आई। वह अपनी कुर्सी छोड़कर उठी। अपने प्रिय टेबुल के पास गई। कुर्सी पर बैठी। होंठों पर अंकित मुस्कराहट खिलती गई।···त्याग-पत्र दे या चूल्हे में जाए मूर्ख अनुरंजन गुप्ता···मेरा धरम बच गया···मेरी इज़्ज़त बच गई···तुम मेरे ही रहे··· मेरे ही !···कांटा दूर हुआ ! आह···! !

टेबुल के टाप ग्लास पर अपने गालों को बारी-बारी रखती, स्पर्श-सुख से सिहरती—सिसकती दुर्बा खिलखिलाई—जाकों जापर सत्य सनेहू ···हं हं हं···सी ई ई ई ! !

मेहता इस अवसर पर कई अप्रचलित अंग्रेज़ी शब्द ढूंढ़कर ले आया था, बधाई देने के लिए। वह चेम्बर में घुसा। आ—उसने देखा मिस दुर्बा दास एबीएम, टेबुल पर बांह पसारे, कांच पर गाल रखकर, खिल-खिला रही है या रो रही है ! आंखों में आंसू हैं और ओंठों पर यह कैसी हंसी ? यह कैसा सुख पा रही है मिस दुर्बा दास ? यह कैसा सुख-दुख ? यह क्या है···?

मेहता को लगा, किसी अश्लील दृश्य के सामने वह खड़ा है ! मूढ़-मति वह !—नहीं, यह दृश्य देखने योग्य नहीं।
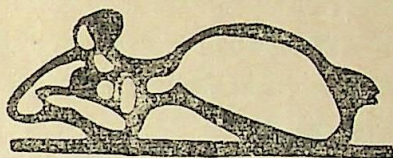
लालपान की बेगम

क्यों बिरजू की मां, नाच देखने नहीं जाएगी क्या ?

बिरजू की मां शकरकंद उबालकर बैठी मन ही मन कुढ़ रही थी अपने आंगन में। सात साल का लड़का बिरजू शकरकंद के बदले तमाचे खाकर आंगन में लोट-लोटकर सारी देह में मिट्टी मल रहा था। चम्पिया के सिर भी चुड़ैल मंडरा रही है···आध-आंगन धूप रहते जो गई है सहुआइन की दुकान छोवा-गुड़ लाने, सो अभी तक नहीं लौटीं; दीया-बाती की बेला हो गई। आए आज लौट के ज़रा! बागड़ बकरे की देह में कुकुरमाछी लगी थी, इसलिए बेचारा बागड़ रह-रहकर कूद-फांद कर रहा था। बिरजू की मां बागड़ पर मन का गुस्सा उतारने का बहाना ढूंढ़कर निकाल चुकी थी।···पिछवाड़े की मिर्च की फूली गाछ! बागड़ के सिवा और किसने कलेवा किया होगा! बागड़ को मारने के लिए वह मिट्टी का एक छोटा ढेला उठा चुकी थी, कि पड़ोसिन मखनी फुआ की पुकार सुनाई पड़ी—क्यों बिरजू की मां, नाच देखने नहीं जाएगी क्या ?

—बिरजू की मां के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो तब न, फुआ!

गरम गुस्से में बुझी नुकीली बात फुआ की देह में धंस गई और बिरजू की मां ने हाथ के ढेले को पास ही फेंक दिया···बेचारे बागड़ को कुकुरमाछी परीशान कर रही है! आ-हा, आय···आय! हर्र-र-र-र! आय-आय!

बिरजू ने लेटे ही लेटे बागड़ को एक डण्डा लगा दिया। बिरजू की मां की इच्छा हुई कि जाकर उसी डण्डे से बिरजू का भूत भगा दे, किन्तु नीम के पास खड़ी पनभरनियों की खिलखिलाहट सुनकर रुक गई। बोली—ठहर, तेरे बप्पा ने बड़ा हथछुट्टा बना दिया है तुझे ! बड़ा हाथ चलता है लोगों पर। ठहर !

मखनी फुग्रा नीम के पास झुकी कमर से घड़ा उतारकर पानी भरकर लौटती पनभरनियों से बिरजू की मां की बहकी हुई बात का इन्साफ करा रही थी—ज़रा देखो तो इस बिरजू की मां को ! चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुग्रा है, धरती पर पांव ही नहीं पड़ते ! निसाफ करो ! खुद ग्रपने मुंह से ग्राठ दिन पहले से ही गांव की ग्रली-गली में बोलती फिरी है, हां, इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है, बैलगाड़ी पर बैठाकर बलरामपुर का नाच दिखा लाऊंगा। बैल ग्रब ग्रपने घर है, तो हज़ार गाड़ी मंगनी मिल जाएगी। सो मैंने ग्रभी टोक दिया, नाच देखनेवाली सब तो ग्रौन-पौन कर तैयार हो रही हैं, रसोई-पानी कर रही हैं। मेरे मुंह में ग्राग लगे, क्यों मैं टोकने गई ! सुनती हो क्या जवाब दिया बिरजू की मां ने !

मखनी फुग्रा ने ग्रपने पोपले मुंह के ग्रोंठों को एक ग्रोर मोड़कर ऐंठती हुई बोली निकाली—ग्रर्-रें-हां-हां ! बि र-र-ज्जू की मै···या के ग्रागे नाथ ग्रौर्-रं-पीछे पगहिया ना हो, तब्ब ना-ग्रा-ग्रा !

जंगी की पुतोहू बिरजू की मां से नहीं डरती। वह ज़रा गला खोलकर ही कहती है—फुग्रा-ग्रा ! सरबे सित्तलमिंटी (सर्वे सेटलमेंट) के हाकिम के बासा पर फूलछाप किनारी वाली साड़ी पहनके यदि तू भी भंटा की भेंटी चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दु-तीन बीघा धनहर ज़मीन का पर्चा कट जाता ! फिर तुम्हारे घर भी ग्राज दस मन सोनाबंग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदती ! फिर ग्रागे नाथ ग्रौर पीछे सैकड़ों पगहिया झूलती !

जंगी की पुतोहू मुंहज़ोर है। रेलवे स्टेशन के पास की लड़की है।

तीन ही महीने हुए गौने की नई बहू होकर आई है और सारे कुर्मा टोली की सभी झगड़ालू सासों से एकाध मोरचा ले चुकी है । उसका ससुर जंगी दागी चोर है, सी-किलासी है। उसका खसम रंगी कुर्मा टोली का नामी लठैत । इसीलिए हमेशा सींग खुजाती फिरती है जंगी की पुतोहू !

बिरजू की मां के आंगन में जंगी की पुतोहू की गला-खोल बोली गुलेल की गोलियों की तरह दनदनाती हुई आई। बिरजू की मां ने एक तीखा जवाब खोजकर निकाला, लेकिन मन मसोसकर रह गई।···गोबर की ढेरी में कौन ढेला फेंके !

जीभ के झाल को गले में उतारकर बिरजू की मां ने अपनी बेटी चम्पिया को आवाज़ दी—अरी चम्पिया-या-या, आज लौटे तो तेरी मूड़ी मरोड़कर चूल्हे में झोंकती हूं ! दिन-दिन बेचाल होती जाती है !··· गांव में तो अब ठेठर-बैसकोप का गीत गानेवाली पतुरिया पुतोहू सब आने लगी हैं । कहीं बैठके 'बाजे न मुरलिया' सीख रही होगी ह-र-जा-ई-ई ? अरी चम्पि-या-या-या !

जंगी की पुतोहू ने बिरजू की मां की बोली का स्वाद लेकर कमर पर घड़े को संभाला और मटककर बोली—चल दिदिया चल ! इस मुहल्ले में लालपान की बेगम बसती है ! नहीं जानती, दोपहर-दिन और चौपहर-रात बिज़ली की बत्ती भक्-भक् कर जलती है !

भक्-भक् बिजली-बत्ती की बात सुनकर न जाने क्यों सभी खिल-खिलाकर हंस पड़ीं। फुआ की टूटी हुई दंत-पंक्तियों के बीच से एक मीठी गाली निकली—शैतान की नानी !

बिरजू की मां की आंखों पर मानो किसीने तेज़ टार्च की रोशनी डालकर चौंधिया दिया।···भक्-भक् बिजली-बत्ती ! तीन साल पहले सर्वे कैम्प के बाद गांव की जलन-डाही औरतों ने एक कहानी गढ़ के फैलाई थी, चम्पिया की मां के आंगन में रात-भर बिजली-बत्ती भुक-भुकाती थी ! चम्पिया की मां के आंगन में, नालवाले जूते की छाप घोड़े की टाप की तरह !···जलो, जलो ! और जलो ! चम्पिया की मां के

आंगन में चांदी जैसे पाट सूखते देखकर जलनेवाली सब औरतें खलिहान पर सोनोली धान के बोझों को देखकर बैंगन का भुर्ता हो जाएंगी।

मिट्टी के बरतन से टपकते हुए छोवा-गुड़ को उंगलियों से चाटती हुई चम्पिया आई और मां के तमाचे खाकर चीख पड़ी—मुझे क्यों मारती है ए-ए-ए ? सहुआइन जल्दी से सौदा नहीं देती है-एं-एं-एं-एं !

—सहुआइन जल्दी सौदा नहीं देती की नानी ! एक सहुआइन की ही दूकान पर मोती झरते हैं, जो जड़ गाड़कर बैठी हुई थी । बोल, गले पर लात देकर कल्ला तोड़ दूंगी हरजाई, जो फिर कभी 'बाजे न मुरलिया' गाते सुना ! चाल सीखने जाती हैं टीशन की छोकरियों से !

बिरजू की मां ने चुप होकर अपनी आवाज़ अन्दाजी कि उसकी बात जंगी के झोपड़े तक साफ-साफ पहुंच गई होगी।

बिरजू बीती हुई बातों को भूलकर उठ खड़ा हुआ था और धूल झाड़ते हुए बरतन से टपकते गुड़ को ललचाई निगाह से देखने लगा था। ···दीदी के साथ वह भी दूकान जाता तो दीदी उसे भी गुड़ चटाती, ज़रूर ! वह शकरकंद के लोभ में रहा और मांगने पर मां ने शकरकंद के बदले···

—ए मैया, एक अंगुली गुड़ दे-दे ! बिरजू ने तलहथी फैलाई—दे ना मैया, एक रत्ती-भर !

—एक रत्ती क्यों, उठाके बरतन को फेंक आती हूं पिछवाड़े में ; जाके चाटना ! नहीं बनेगी मीठी रोटी !···मीठी रोटी खाने का मुंह होता है !—बिरजू की मां ने उबले शकरकंद का सूप रोती हुई चम्पिया के सामने रखते हुए कहा—बैठके छिलके उतार, नहीं तो अभी···।

दस साल की चम्पिया जानती है, शकरकंद छीलते समय कम से कम बारह बार मां उसे बाल पकड़कर झकझोरेगी, छोटी-छोटी खोट निकालकर गालियां देगी ।···पांव फैलाके क्यों बैठी है उस तरह, बेलज्जी ! चम्पिया मां के गुस्से को जानती है।

बिरजू ने इस मौके पर थोड़ी-सी खुशामद करके देखा—मैया, मैं

भी बैठकर शकरकंद छीलूं ?

—नहीं ! मां ने झिड़की दी—एक शकरकंद छीलेगा और तीन पेट में ! जाके सिद्धू की बहू से कहो, एक घण्टे के लिए कड़ाही मांगकर ले गई तो फिर लौटाने का नाम ही नहीं। जा जल्दी !

मुंह लटकाकर आंगन से निकलते-निकलते बिरजू ने शकरकंद और गुड़ पर निगाह दौड़ाई। चम्पिया ने अपने झबरे केश की ओट से मां की ओर देखा और नज़र बचाकर चुपके से बिरजू की ओर एक शकरकंद फेंक दिया।...बिरजू भागा।

—सूरज भगवान डूब गए। दीयाबत्ती की बेला हो गई। अभी तक गाड़ी...

चम्पिया बीच में ही बोल उठी—कोयरी टोले में किसीने गाड़ी नहीं दी मैया ! बप्पा बोले, मां से कहना सब ठीक-ठाक करके तैयार रहे। मलदहिया टोली के मियांजान की गाड़ी लाने जा रहा हूं।

सुनते ही बिरजू की मां का चेहरा उतर गया। लगा, छाती की कमानी उतर गई घोड़े से अचानक। कोयरी टोले में किसीने गाड़ी मंगनी नहीं दी ! तब मिल चुकी गाड़ी ! जब अपने गांव के लोगों की आंख में पानी नहीं तो मलदहिया टोली के मियांजान की गाड़ी का क्या भरोसा ! न तीन में, न तेरह में ! क्या होगा शकरकंद छीलकर ! रख दे उठा के !...यह मर्द नाच दिखाएगा ! बैलगाड़ी पर चढ़ाकर नाच दिखाने ले जाएगा ! चढ़ चुकी बैलगाड़ी पर, देख चुकी जी-भर नाच !...पैदल जानेवाली सब पहुंचकर पुरानी हो चुकी होंगी।

बिरजू छोटी कड़ाही सिर पर औंधाकर वापस आया—देख दिदिया, मलेटरी टोपी ! इसपर दस लाठी मारने से भी कुछ नहीं होगा।

चम्पिया चुपचाप बैठी रही, कुछ बोली नहीं, ज़रा-सी मुस्कराई भी नहीं। बिरजू ने समझ लिया मैया का गुस्सा अभी उतरा नहीं है पूरे तौर से।

मढ़ैया के अन्दर से बागड़ को बाहर भगाती हुई बिरजू की मां बड़-

बड़ाई—कल ही पंचकौड़ी कसाई के हवाले करती हूं राकस तुझे! हर चीज़ में मुंह लगाएगा। चम्पिया, बांध दे बगड़ा को। खोल दे गले की घण्टी। हमेशा टुनुर-टुनुर! मुझे जरा नहीं सुहाता है!

टुनुर-टुनुर सुनते ही बिरजू को सड़क से जाती हुई बैलगाड़ियों की याद हो आई। अभी बबुआन टोले की गाड़ियां नाच देखने जा रही थीं—झुनुर-झुनुर बैलों की झुनकी, तुमने सु···

—वेसी बक-बक मत करो!—बागड़ के गले से झुनकी खोलती बोली चम्पिया।

—चम्पिया, डाल दे चूल्हे में पानी! बप्पा आवें तो कहना कि अपने उड़नजहाज पर चढ़कर नाच देख आएं! मुझे नाच देखने का सौख नहीं!···मुझे जगाइयो मत कोई! मेरा माथा दुख रहा है।

मढ़ैया के ओसारे पर बिरजू ने फिसफिसाके पूछा—क्योंकर दिदिया, नाच में उड़नजहाज भी उड़ेगा?

चटाई पर कथरी ओढ़कर बैठती हुई चम्पिया ने बिरजू को चुपचाप अपने पास बैठने का इशारा किया, मुफ्त में मार खाएगा बेचारा!

बिरजू ने बहन की कथरी में हिस्सा बांटते हुए चुक्की-मुक्की लगाई। जाड़े के समय इस तरह घुटने पर ठुड्डी रखकर चुक्की-मुक्की लगाना सीख चुका है वह। उसने चम्पिया के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—हम लोग नाच देखने नहीं जाएंगे?···गांव में एक पंछी भी नहीं है। सब चले गए।

चम्पिया को अब तिल-भर भी भरोसा नहीं। संझा तारा डूब रहा है। बप्पा अभी तक गाड़ी लेकर नहीं लौटे।···एक महीना पहले से ही मैया कहती थी, बलरामपुर के नाच के दिन मीठी रोटी बनेगी; चम्पिया छींट की साड़ी पहनेगी; बिरजू पैंट पहनेगा। बैलगाड़ी पर चढ़कर···

चम्पिया की भीगी पलकों पर एक बूंद आंसू आ गया।

बिरजू का भी दिल भर आया। उसने मन ही मन इमली पर रहनेवाले जिन बाबा को एक बैंगन कबूला, गाछ का सबसे पहला बैंगन,

उसने खुद जिस पौधे को रोपा है ! ···जल्दी से गाड़ी लेकर बप्पा को भेज दो, जिनबाबा !

मढ़ैया के अन्दर बिरजू की मां चटाई पर पड़ी करवटें ले रही थी। उंहु, पहले से किसी बात का मनसूबा नहीं बांधना चाहिए किसीको ! भगवान ने मनसूबा तोड़ दिया। उसको सबसे पहले भगवान से पूछना है, यह किस चूक का फल दे रहे हो भोला बाबा ! अपने जानते उसने किसी देवता-पित्तर की मान-मनौती बाकी नहीं रखी। सर्वे के समय ज़मीन के लिए जितनी मनौतियां की थीं···ठीक ही तो ! महाबीरजी का रोट तो बाकी ही है। हाय रे दैव ! ···भूल-चूक माफ करो महावीर बाबा ! मनौतीं दूनी करके चढ़ाएगी बिरजू की मां ! ···

बिरजू की मां के मन में रह-रहकर जंगी की पुतोहू की बातें चुभती हैं, भक्-भक् बिजली बत्ती! ···चोरी-चमारी करनेवाले की बेटी-पुतोहू जलेगी नहीं ! पांच बीघा जमीन क्या हासिल की है बिरजू के बप्पा ने, गांव की भाईखौकियों की आंखों में किरकिरी पड़ गई है। खेत में पाट लगा देखकर गांव के लोगों की छाती फटने लगी; धरती फोड़कर पाट लगा है; वैशाखी बादलों की तरह उमड़ते आ रहे हैं पाट के पौधे ! तो अलान तो फलान ! इतनी आंखों की धार भला फसल सहे ! जहां पन्द्रह मन पाट होना चाहिए, सिर्फ दस मन पाट कंटा पर तौल के ओजन हुआ रब्बी भगत के यहां।···

इसमें जलने की क्या बात है भला ! ···बिरजू के बप्पा ने तो पहले ही कुर्मा टोली के एक-एक आदमी को समझाके कहा था, जिन्दगी-भर मजदूरी करते रह जाओगे। सर्वे का समय आ रहा है, लाठी कड़ी करो तो दो-चार बीघे जमीन हासिल कर सकते हो। सो गांव को किसी पुत-खौकी का भतार सर्वे के समय बाबू साहेब के खिलाफ खांसा भी नहीं।··· बिरजू के बप्पा को कम सहना पड़ा है ! बाबू साहेब गुस्से में सरकस नाच के बाघ की तरह हुमड़ते रह गए। उनका बड़ा बेटा घर में आग लगाने की धमकी देकर गया।···आखिर बाबू साहेब ने अपने सबसे छोटे

लड़के को भेजा। बिरजू की मां को 'मौसी' कहके पुकारा—यह ज़मीन बाबूजी ने मेरे नाम से खरीदी थी। मेरी पढ़ाई-लिखाई उसी ज़मीन की उपज से चलती है।···और भी कितनी बातें। खूब मोहना जानता है उत्ता ज़रा-सा लड़का। ज़मींदार का बेटा है कि···

—चम्पिया, बिरजू सो गया क्या! यहां आ जा बिरजू, अन्दर। तू भी आ जा, चम्पिया।···भला आदमी आवें तो एक बार आज!

बिरजू के साथ चम्पिया अन्दर चली गई।

—ढिबरी बुझा दे।···बप्पा बुलाएं तो जवाब मत देना। खप्पची गिरा दे।

भला आदमी रे, भला आदमी! मुंह देखो ज़रा इस मर्द का!··· बिरजू की मां दिन-रात मंझा न देती रहती तो ले चुके थे जमीन! रोज़ आकर माथा पकड़के बैठ जाएं, मुझे जमीन नहीं लेनी है बिरजू की मां, मजूरी ही अच्छी।···जवाब देती थी बिरजू की मां खूब सोच-समझके। छोड़ दो, जब तुम्हारा कलेजा ही थिर नहीं होता है तो क्या होगा! जोरू-जमीन जोर के, नहीं तो किसी और के!···

बिरजू के बाप पर बहुत तेज़ी से गुस्सा चढ़ता है। बढ़ता ही जाता है।···बिरजू की मां का भाग ही खराब है, जो ऐसा गोबरगनेश घरवाला उसे मिला। कौन-सा सौख-मौज दिया है उसके मर्द ने! कोल्हू के बैल की तरह खटकर सारी उम्र काट दी इसके यहां, कभी एक पैसे की जलेबी भी लाकर दी है उसके खसम ने!···पाट का दाम भगत के यहां से लेकर बाहर ही बाहर बैल-हट्टा चले गए। बिरजू की मां को एक बार नमरी लोट देखने भी नहीं दिया आंख से।···बैल खरीद लाए। उसी दिन से गांव में ढिंढोरा पीटने लगे, बिरजू की मां इस बार बैलगाड़ी पर चढ़कर जाएगी नाच देखने!···दूसरे की गाड़ी के भरोसे नाच दिखा-एगा!···

अन्त में उसे अपने-आप पर क्रोध हो आया। वह खुद भी कुछ कम नहीं! उसकी जीभ में आग लगे! बैलगाड़ी पर चढ़कर नाच देखने की

लालसा किस कुसमय में उसके मुंह से निकली थी, भगवान जानें ! फिर आज सुबह से दोपहर तक, किसी न किसी बहाने उसने अट्ठारह बार बैलगाड़ी पर नाच देखने जाने की चर्चा छेड़ी है।···लो, खूब देखो नाच ! वाह रे नाच ! कथरी के नीचे दुशाले का सपना !···कल भोरे पानी भरने के लिए जब जाएगी, पतली जीभवाली पतुरिया सब हंसती आएंगी, हंसती जाएंगी।···सभी जलते हैं उससे, हां, भगवान दाढ़ीजार भी !··· दो बच्चों की मां होकर भी वह जस की तस है। उसका घरवाला उसकी बात में रहता है। वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी जमीन है। है किसीके पास एक धूर जमीन भी अपनी इस गांव में ! जलेंगे नहीं, तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी। लोगों की बिख-दीठ से बचे, तब तो !

बाहर बैलों की घण्टियां सुनाई पड़ीं। तीनों सतर्क हो गए। उत्कर्ण होकर सुनते रहे।

—अपने ही बैलों की घण्टी है, क्यों री चम्पिया ?

चम्पिया और बिरजू ने प्रायः एक ही साथ कहा—हूं-ऊं-ऊं !

—चुप !—बिरजू की मां ने फिसफिसाकर कहा—शायद गाड़ी भी है ! घड़घड़ाती है न ?

—हूं-ऊं-ऊं !—दोनों ने फिर हुंकारी भरी।

—चुप ! गाड़ी नहीं है। तू चुपके से टट्टी में छेद करके देख तो आ चम्पी ! भाग के आ, चुपके-चुपके।

चम्पिया बिल्ली की तरह हौले-हौले पांव से टट्टी के छेद से झांक आई—हां मैया, गाड़ी भी है !

बिरजू हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसकी मां ने उसे हाथ पकड़कर सुला दिया—बोले मत !

चम्पिया भी गुदड़ी के नीचे घुस गई।

बाहर बैलगाड़ी खोलने की आवाज हुई। बिरजू के बाप ने बैलों को ज़ोर से डांटा—हां-हां ! आ गए घर ! घर आने के लिए छाती

फटी जाती थी !

बिरजू की मां ताड़ गई, जरूर मलदहिया टोली में गांजे की चिलम चढ़ रही थी, आवाज़ तो बड़ी खनखनाती हुई निकल रही है।

—चम्पिया-ह ! बाहर से ही पुकारकर कहा उसके बाप ने—बैलों को घास दे दे, चम्पिया-ह !

अन्दर से कोई जवाब नहीं आया। चम्पिया के बाप ने आंगन में आकर देखा तो न रोशनी, न चिराग, न चूल्हे में आग।···बात क्या है ! नाच देखने, उतावली होकर, पैदल ही चली गई क्या···!

बिरजू के गले में खसखसाहट हुई और उसने रोकने की पूरी कोशिश भी की, लेकिन खांसी जब शुरू हुई तो पूरे पांच मिनट तक वह खांसता रहा।

—बिरजू ! बेटा बिरजमोहन !—बिरजू के बाप ने पुचकारकर बुलाया—मैया गुस्से के मारे सो गई क्या ?···अरे, अभी तो लोग जा ही रहे हैं।

बिरजू की मां के मन में आया कि कसकर जवाब दे, नहीं देखना है नाच लौटा दो गाड़ी !

—चम्पिया-ह ! उठती क्यों नहीं ? ले, धान की पंचसीस रख दे। धान की बालियों का छोटा झब्बा झोंपड़े के ओसारे पर रखकर उसने कहा—दीया बालो !

बिरजू की मां उठकर ओसारे पर आई—डेढ़ पहर रात को गाड़ी लाने की क्या जरूरत थी ? नाच तो अब खत्म हो रहा होगा।

ढिबरी की रोशनी में धान की बालियों का रंग देखते ही बिरजू की मां के मन का सब मैल दूर हो गया।···धानी रंग उसकी आंखों से उतरकर रोम-रोम में घुल गया।

—नाच अभी शुरू भी नहीं हुआ होगा। अभी-अभी बलरामपुर के बाबू की कम्पनी गाड़ी मोहनपुर होटिल बंगला से हाकिम साहब को लाने गई है। इस साल आखिरी नाच है।···पंचसीस टट्टी में खोंस दे,

अपने खेत का है।

—अपने खेत का ?—हुलसती हुई बिरजू की मां ने पूछा—पक गए धान ?

—नहीं, दस दिन में अगहन चढ़ते-चढ़ते लाल होकर झुक जाएंगी सारे खेत की बालियां।…मलदहिया टोली जा रहा था, अपने खेत में धान देखकर आंखें जुड़ा गईं। सच कहता हूं, पंचसीस तोड़ते समय उंगलियां कांप रही थीं मेरी !

बिरजू ने धान की एक बाली से एक धान लेकर मुंह में डाल लिया और उसकी मां ने एक हलकी डांट दी—कैसा लुक्कड़ है तू रे !…इन दुश्मनों के मारे कोई नेम-धरम जो बचे !

—क्या हुआ, डांटती क्यों है ?

—नवान्न के पहले ही नया धान जुठा दिया, देखते नहीं ?

—अरे, इन लोगों का सब-कुछ माफ है। चिरई-चुनमुन हैं ये लोग ! बस हम दोनों के मुंह में नवान्न के पहले नया अन्न न पड़े।

इसके बाद चम्पिया ने भी धान की बाली से दो धान लेकर दांतों-तले दबाया—ओ मैया ! इतना मीठा चावल !

—और गमकता भी है न दिदिया ? बिरजू ने फिर मुंह में धान लिया।

—रोटी-पोटी तैयार कर चुकी क्या ?—बिरजू के बाप ने मुस्कराकर पूछा।

—नहीं !—मान-भरे सुर में बोली बिरजू की मां—जाने का ठीक-ठिकाना नहीं…और रोटी बनाती है !

—वाह ! खूब हो तुम लोग !…जिसके पास बैल है, उसे गाड़ी मंगनी नहीं मिलेगी भला ? गाड़ीवालों को भी बैल की कभी जरूरत होगी।…पूछूंगा तब कोयरीटोलावालों से !…ले जल्दी से रोटी बना ले।

—देर नहीं होगी ?

—अरे, टोकरी-भर रोटी तो तू पलक मारते बना लेती है ; पांच

रोटियां बनने में कितनी देर लगेगी !

अब बिरजू की मां के ओठों मर मुस्कराहट खुलकर खेलने लगी। उसने नज़र बचाकर देखा, बिरजू का बप्पा उसकी ओर एकटक निहार रहा है।…चम्पिया और बिरजू न होते तो मन की बात हंसकर खोलते देर न लगती। चम्पिया और बिरजू ने एक-दूसरे को देखा और खुशी से उनके चेहरे जगमगा उठे।…मैया बेकार गुस्सा हो रही थी न !

—चम्पी ! ज़रा घैलसार में खड़ी होकर मखनी फुआ को आवाज़ दे तो !

—ऐ फू आ-आ ! सुनती हो फुआ-आ ! मैया बुला रही है !

फुआ ने कोई जवाब सीधे नहीं दिया, किन्तु उसकी बड़बड़ाहट स्पष्ट सुनाई पड़ी—हां ! अब फुआ को क्यों गुहारती है ? सारे टोले में बस एक फुआ ही तो बिना नाथ-पगहियावाली है।

—अरी फुआ !—बिरजू की मां ने हंसकर जवाब दिया—उस समय बुरा मान गई थीं क्या ? नाथ-पगहियावाले को आकर देखो, दोपहर रात में गाड़ी लेकर आया है ! आ जाओ फुआ, मैं मीठी रोटी पकाना नहीं जानती।

फुआ कांखती-खांसती आई—इसीसे घड़ी-पहर दिन रहते ही पूछ रही थी कि नाच देखने जाएगी क्या ? कहती, तो मैं पहले से ही अपनी अंगीठी यहां सुलगा जाती।

बिरजू की मां ने फुआ को अंगीठी दिखला दी और कहा—घर में अनाज-दाना वगैरह तो कुछ है नहीं। एक बागड़ है और कुछ बरतन-बासन। सो रात-भर के लिए यहां तम्बाकू रख जाती हूं। अपना हुक्का ले आई हो न फुआ ?

फुआ को तम्बाकू मिल जाए, तो रात-भर क्या, पांच रात बैठकर जाग सकती है। फुआ ने अंधेरे में टटोलकर तम्बाकू का अन्दाज़ किया। …ओ-हो ! हाथ खोलकर तम्बाकू रखा है बिरजू की मां ने ! और एक वह है साहुआइन ! राम कहो ! उस रात को अफीम की गोली की

तरह एक मटर-भर तम्बाकू रखकर चली गई गुलाब बाग मेले और कह गई कि डिब्बी-भर तम्बाकू है।

बिरजू की मां चूल्हा सुलगाने लगी। चम्पिया ने शकरकंद को मसलकर गोले बनाए और बिरजू सिर पर कड़ाही औंधाकर अपने बाप को दिखलाने लगा—मलेटरी टोपी ! इसपर दस लाठी मारने से भी कुछ नहीं होगा !

सभी ठठाकर हंस पड़े। बिरजू की मां हंसकर बोली—ताखे पर तीन-चार मोटे शकरकंद हैं, दे दे बिरजू को चम्पिया, बेचारा शाम से ही···

—बेचारा मत कहो मैया, खूब सचारा है ! —अब चम्पिया चहकने लगी—तुम क्या जानो, कथरी के नीचे मुंह क्यों चल रहा था बाबू साहब का !

—ही-ही-ही !

बिरजू के टूटे दूध के दांतों की फांक से बोली निकली—बिलैक-मार-टिन में पांच शकरकंद खा लिया ! हा-हा-हा !

सभी फिर ठठाकर हंस पड़े। बिरजू की मां ने फुआ का मन रखने के लिए पूछा—एक कनवां गुड़ है। आधा डाल दूं फुआ ?

फुआ ने गद्‌गद होकर कहा—अरी शकरकंद तो खुद मीठा होता है, उतना क्यों डालेगी !

जब तक दोनों बैल दाना-घास खाकर एक-दूसरे की देह को जीभ से चाटें, बिरजू की मां तैयार हो गई। चम्पिया ने छींट की साड़ी पहनी और बिरजू बटन के अभाव में पेंट पर पटसन की डोरी बंधवाने लागा।

बिरजू की मां ने आंगन से निकल गांव की ओर कान लगाकर सुनने की चेष्टा की—उंहु, इतनी देर तक भला पैदल जानेवाले रुके रहेंगे !

पूर्णिमा का चांद सिर पर आ गया है।···बिरजू की मां ने असली रूपा का मंगटिक्का पहना है आज, पहली बार। बिरजू के बप्पा को हो क्या गया है, गाड़ी जोतता क्यों नहीं, मुंह की ओर एकटक देख रहा है,

मानो नाच की लाल पान की···

गाड़ी पर बैठते ही बिरजू की मां की देह में एक अजीव गुदगुदी लगने लगी। उसने बांस की बल्ली को पकड़कर कहा—गाड़ी पर अभी बहुत जगह है।···ज़रा दाहिनी सड़क से हांकना।

बैल जब दौड़ने लगे और पहिया जब चूं-चूं करके घरघराने लगा तो बिरजू से नहीं रहा गया—उड़नजहाज की तरह उड़ाओ बप्पा !

गाड़ी जंगी के पिछवाड़े पहुंची। बिरजू की मां ने कहा—जरा जंगी से पूछो न, उसकी पुतोहू नाच देखने चली गई क्या।

गाड़ी रुकते ही जंगी के झोंपड़े से आती हुई रोने की आवाज़ स्पष्ट हो गई। बिरजू के बप्पा ने पूछा—अरे जंगी भाई, काहे कन्ना-रोहट हो रहा है आंगन में ?

जंगी घूर ताप रहा था, बोला—क्या पूछते हो, रंगी बलरामपुर से लौटा नहीं, पुतोहिया नाच देखने कैसे जाए ! आसरा देखते-देखते उधर गांव की सभी औरतें चली गईं।

अरी टीशनवाली, तो रोती है काहे !—बिरजू की मां ने पुकार-कर कहा—आ जा झट से कपड़ा पहनकर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है ! बेचारी !···आ जा जल्दी !

बगल के झोंपड़े से राधे की बेटी सुनरी ने कहा—काकी, गाड़ी में जगह है ? मैं भी जाऊंगी।

बांस की झाड़ी के उस पार लरेना खवास का घर है। उसकी बहू भी नहीं गई है। गिलट का झुनकी-कड़ा पहनकर झमकती आ रही है।

—आ जा ! जो बाकी रह गई हैं, सब आ जाएं जल्दी !

जंगी की पुतोहू, लरेना की बीबी और राधे की बेटी सुनरी, तीनों गाड़ी के पास आईं। बैल ने पिछला पैर फेंका। बिरजू के बाप ने एक भद्दी गाली दी—साला ! लताड़ मारकर लंगड़ी बनाएगा पुतोहू को !

सभी ठठाकर हंस पड़े। बिरजू के बाप ने घूंघट में झुकी दोनों पुतोहुओं को देखा। उसे अपने खेत की झुकी हुई बालियों की याद आ गई !

जंगी की पुतोहू का गौना तीन ही मास पहले हुआ है। गौने की रंगीन साड़ी से कड़वे तेल और लठवा सिंदूर की गंध आ रही है। बिरजू की मां को अपने गौने की याद आई। उसने कपड़े की गंठरी से तीन मीठी रोटियां निकालकर कहा—खा ले एक-एक कर। सिमराहा के सरकारी कूप में पानी पी लेना।

गाड़ी गांव से बाहर होकर धान के खेतों के बगल से जाने लगी। चांदनी, कातिक की!···खेतों से धान के झरते फूलों की गंध आती है। बांस की झाड़ी में कहीं दुद्धी की लता फूली है। जंगी की पुतोहू ने एक बीड़ी सुलगाकर बिरजू की मां की ओर बढ़ाई। बिरजू की मां को अचानक याद आई, चम्पिया, सुनरी, लरेना की बीवी और जंगी की पुतोहू, ये चारों ही तो गांव में बैसकोप का गीत गाना जानती हैं।···खूब!

गाड़ी की लीक धनखेतों के बीच होकर गई है। चारों ओर गौने की साड़ी की खसखसाहट जैसी आवाज़ होती है।···बिरजू की मां के माथे के मंगटिक्के पर चांदनी छिटकती है।

—अच्छा, अब एक बैसकोप का गीत गा तो चम्पिया।···डरती है काहे? जहां भूल जाओगी, बगल में तो मास्टरनी बैठी ही है!

दोनों पुतोहुओं ने तो नहीं, किन्तु चम्पिया और सुनरी ने खखासकर गला साफ किया।

बिरजू के बाप ने बैलों को ललकारा—चल भैया! और जरा जोर से!···गा रे चम्पिया, नहीं तो मैं बैलों को धीरे-धीरे चलने को कहूंगा!

जंगी की पुतोहू ने चम्पिया के कान के पास घूंघट ले जाकर कुछ कहा और चम्पिया ने धीमे से शुरू किया—चन्दा की चांदनी···

बिरजू को गोद में लेकर बैठी उसकी मां की इच्छा हुई कि वह भी साथ-साथ गीत गाए। बिरजू की मां ने जंगी की पुतोहु की ओर देखा, धीरे-धीरे गुनगुना रही है वह भी। कितनी प्यारी पुतोहू है! गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गंध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने! बिरजू की मां बेगम है, लालपान की बेगम! यह तो कोई बुरी

बात नहीं। हां, वह सचमुच लालपान की बेगम है।

बिरजू की मां ने अपनी नाक पर दोनों आंखों को केन्द्रित करने की चेष्टा करके अपने रूप की झांकी ली, लाल साड़ी की झिलमिल किनारी, मंगटिक्का पर चांद।···बिरजू की मां के मन में अब और कोई लालसा नहीं। उसे नींद आ रही है!
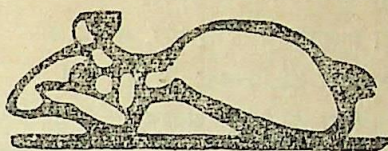
तीन बिंदियां

गीताली दास अपने को सुरजीवी कहती है। नाद-सुर-ताल आदि के सहारे ही वह इस मंज़िल तक पहुंच सकी है। सभी कहते हैं, उसकी साधना सफल हुई है।···कितने भोले और बेचारे होते हैं लोग। साधना के सफल-असफल होने की घोषणा करनेवालों से वह पूछना चाहती है, सफल साधना का कोई सीधा-सा अर्थ ! यह ठीक है कि अनेक अ-सांगीतिक वातावरणों को गीताली ने अपने सुनहले सुर व सुगम गीतों से संगीतमय कर दिया है, कि किसी भी संगीत-समारोह या सांस्कृतिक प्रतिष्ठान के संयोजक आज भी गीताली के नाम पर गीत-प्रेमियों को बटोर लेते हैं !···किन्तु, और कितने दिन ? मीताली 'दी की सफल साधना का क्या हुआ ? गीताली ने अपनी बड़ी दीदी मीताली की गलतियों से लाभ उठाया है।···

विशुद्ध (?) ठुमरी-गायिका मीताली की सफल ज़िन्दगी के महज़ चौबीस महीनों के सामने अपने सुर-जीवन के 'रोल' किए हुए—परिपाटी से मुड़े हुए—अंश को खोलती है, धीरे-धीरे ! नौ वर्ष ? एक सौ आठ महीने कम नहीं !···

गीताली आजकल अक्सर अपने मन में उत्पन्न होनेवाले सहायक नाद का विश्लेषण करती है।···सहायक नाद ! जिसको ओवरटोन कहते हैं। नाद कभी अकेला उत्पन्न नहीं होता। उसके साथ-साथ अन्य नादों का भी जन्म होता है। उस स्वर को हम सुन पाएं अथवा नहीं,

हाराधन यन्त्रकार का एक तैलचित्र लटक गया उसके मन की दीवार पर।···न जाने यन्त्रकारजी कहां हैं! गीताली अपने दोनों हाथों को जोड़कर शून्य में एक नमस्कार करती है।···

ज़िन्दगी के इर्द-गिर्द झंकृत होनेवाले सहायक नादों से प्रथम साक्षात् परिचय मिस्त्री हाराधन यन्त्रकार ने ही करवा दिया था। मिस्त्री नहीं गुरु मानती है हाराधन यन्त्रकार को। यन्त्रकारजी के मन्त्र-बल से ही गीत-पागल हुई।···जानती हैं खुकी, सफल शिकारी होने के लिए आदमी को सभी किस्म के शिकारियों से दीक्षा लेनी होती है; शेर-भालू के शिकारियों से लेकर व्याध-लुब्धक और सपेरों की भी संगति करनी होती है। यन्त्रकार कहो, मिस्त्री कहो या कारीगर, तुम मेरी नातिन की उम्र की हो। नाना की बात सुनोगी?···यन्त्र के सहारे ही सहायक नादों की पांच हज़ार आन्दोलन-युक्त ध्वनियों की बारीकियों का उपभोग कर सकोगी। सदा ध्वनित होनेवाले जाने-अनजाने सुर में तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण मुखरित हो उठेगा।···

अलख-मुखर जगत् में दस वर्ष पूर्व की बातें मुखरित हो रही हैं।···

सुर-मन्दिर के मैनेजर को कटुवचन कहने को बाध्य हो गई थी गीताली।···शहर की सबसे पुरानी और निर्भर-योग्य बाजे की दुकान की यह हालत! एक ही सप्ताह में तीन बार तानपूरा ठीक करवाकर ले गई, फिर जैसे का तैसा! गीत के बीच में ही साथ छोड़ देता है।··· रोग क्या है यह बतानेवाला कोई विशेषज्ञ नहीं आपके पास? तो सुर-मन्दिर कहूं या असुर-मन्दिर? मैनेजर का मुंह बेजान माइक की तरह गोल खुला रहा। गीताली तानपूरा लेकर सुर-मन्दिर की सीढ़ियों से उतर गई थी, फिर कभी न लौटने की प्रतिज्ञा करती हुई। एक-दो-तीन···!

—ओ दीदी, सुनेन, सुनेन।—कुछ दूर चलने के बाद, पीछे से पुकार सुनकर गीताली मुड़ी···एक नाटा-भूटा, गोल-मटोल लड़का

लुढ़कता हुआ आ रहा है फुटपाथ पर। कौन है यह, किमाकार छोकरा? लड़के ने निकट आकर नमस्कार किया—आप गीताली 'दी हैं? हैं न!···हें-हें, हें-हें, तानपूरा क्या, सुर-मन्दिर में सभी बाजों का गला इसी तरह घोंटा जाता है। जब से मिस्त्री हारावन यन्त्रकार सुर-मन्दिर को सलाम करके निकल गया है, सभी असुर ही रह गए हैं। आपने ठीक ही कहा है गीताली 'दी।···

गीताली ने देखा, लड़का अकाल-परिपक्व नहीं, किसी ग्रन्थि-विकार का शिकार है। बौना नहीं, नाटा और बगैर मूंछोंवाला घुघलू! उसने अपना नाम बताया—घुघलू।···आसाम की ओर कहीं जन्म हुआ। मिस्त्री हाराधन यन्त्रकार के साथ गत पन्द्रह-बीस वर्षों से है। कलकत्ते में सात-आठ साल, दो-तीन वर्ष इधर-उधर, और यहां भी करीब पांच-सात साल हुए।···

घुघलू ने बताया, मिस्त्री हाराधन यन्त्रकार अब किसीकी दूकान में काम नहीं करता; अपनी गली से बाहर कहीं आता-जाता नहीं। गली में क्या, अपने कमरे से बाहर निकलने की छुट्टी नहीं। घुघलू ने कई नये-पुराने यन्त्रवादकों के नाम गिनाये; जिन्हें ज़रूरत होती है मिस्त्री हाराधन यन्त्रकार को खोजकर पहुंचते हैं, कलकत्ता से, लखनऊ से, काशी से।···

गीताली तुरत राज़ी हो गई। घुघलू ने रिक्शेवाले को आवाज़ दी—ए रिक्शावाला, मुहल्ला दूधकूप चलेगा?

मुहल्ला दूधकूप की एक गली में कुछ दूर जाने के बाद घुघलू एक खपरैल के घर के पास रुका। बन्द किवाड़ों के एक छेद में आंख लगाकर अन्दर के वातावरण का अन्दाज़ लगा लिया। फिर सांकल हिलाने लगा। अन्दर से किसी असन्तुष्टात्मा की खनखनाती हुई आवाज़ बन्द किवाड़ों के छेदों से सुनाई पड़ी। अन्दर के व्यक्ति को बहुत-से प्रश्नों के उत्तर देकर कुछ सन्तुष्ट किया घुघलू ने। तब जाकर दरवाज़ा खुला। लगा, अन्दर के किसी व्यक्ति ने अपने कमरे से ही रस्सी खींचकर चट-

मूल नाद से उत्पन्न होनेवाले इन नादों को सहायक नाद कहा जाता है। स्वयं ही जन्म लेने के कारण इन्हें स्वयंभू स्वर भी कहते हैं। गीताली ने इन्हीं स्वरों की सहायता से सिद्धि और प्रसिद्धि प्राप्त की है; प्रार्थना के सुर में हरदम बजती हुई ज़िन्दगी के सुर-ताल की सीमा से कभी बाहर नहीं गई। सीमा को विस्तृत अवश्य किया उसने।···लेकिन इधर कुछ दिनों से उसको भय होने लगा है। गीत गाते समय, मूर्त होते हुए राग एकाध बार अस्पष्टतर भी हुए हैं।···

···हुं-ह-हुं-हूं-हूं-हूं···ज़ीवन हुआ है एक प्रार्थना-ा-गीत की त-र-ह !

इस ज़िन्दगी के कुछ अंश को काट लेती है गीताली, टुकड़े-टुकड़े करती है, मसल डालती है। फिर, चूर्ण-विचूर्ण क्षणों की सुर-कणिकाओं को सहायक नाद की सहायता से परखती है। डॉट-डॉट-डॉट ! गीताली इन नन्ही-नन्ही तीन बिंदियों को, आंखों के सामने शून्य में उभरनेवाली छोटी-छोटी तारिकाओं को, अब अच्छी निगाह से देखती है; पहचानती है इस शुभ चिह्न को।···

गीताली सुरजीवी है, किन्तु साहित्य-जगत की साधना और प्रगति का भी थोड़ा ज्ञान रखती है। उसके जीजाजी (जमाय बाबू !) अपने को अवसर की ताक में बैठा हुआ, किसी भी दिन प्रसिद्ध हो जानेवाला, प्रच्छन्न आलोचक मानते हैं। टाइम-बोमा ! ···टाइम-बोमा ना आलू-बोमा गरम-गरम आलू चॉप प्लेट में लेकर जीजाजी के कमरे में गई थी वह। सुदर्शना-अदर्शना भी साथ थीं। दुष्टता-भरी हंसी को ज़ब्त करके गम्भीर होने की चेष्टा करती हुई गीताली ने कहा था—देखिए जमाय बाबू, यह आलू का बोमा यानी बम है ! आलू के भुर्ते के शेल में हरे चने के दाने बन्द हैं।··· विशुद्ध घी में मर्जित इस अविस्फोटक बमों के फटने का नहीं, जुड़ाने का अवसर उपस्थित हो रहा है।···अब तक, यह भी आलू के रूप में ताक लगाकर बैठा था।

शैतान सुदर्शना मुंह बनाकर बोली थी—न-न आलू मत कहो। जमाय बाबू तो अवसर पाते ही टूटनेवाले हिंस्र प्राणी हो सकते हैं।

शिकार सामने आया कि···। हो-हो-हो ! जमाय बाबू भी हंसे थे। किन्तु दीदी बुरा मान गई थी।···जो भी हो, जमाय बाबू की किताब खरीदने की विचित्र आदत से गीताली और उसकी सखियां सुदर्शना-अदर्शना भी खूब लाभान्वित हुई थीं। कथा-साहित्य की अच्छी-बुरी पोथियां पढ़ने को मिल जाती थीं।···

आधुनिक कथा-साहित्य में एक वर्ग डॉटवादियों का भी है। डॉट-डॉट-डॉट ! अब तक उठा नहीं है, किन्तु प्रश्न किसी भी दिन उठ सकता है कि ऐसी डॉटमयी रचनाओं के रचयिताओं के दिमाग में सिर्फ डॉट ही डॉट तो नहीं ! दिमाग की जगह, मछली के असंख्य अंडों की थैली तो नहीं ?···साधारण पाठक अधिकांश ऐसी बिंदी-बूटेदार रचनाओं को भली नज़र से नहीं देखते। सारी किताब में, हर पृष्ठ और पंक्ति में यत्र-तत्र सरसों के दाने की तरह बिखरी हुई बिंदियों के बाहुल्य से पाठकों की आंखें किरकिराने लगती हैं !···

गीताली इन बिन्दियों को अलख मुखर जगत् की खिड़की समझती है, तीन गोल-गोल लाल कांचवाली। अन्दर प्रकाश होता है। अलख-मुखर जगत् का व्यापार शुरू हुआ।···

तीन बिंदियों के सहारे अप्रासंगिक प्रसंगों और असंलग्न महूर्तों को रूपायित करनेवाले, किसी अन्य जगत् की हल्की छवि दिखाने-वाले, प्याज़ के छिलके उतारनेवाले, ऐसे किसी शब्द-शिल्पी से कभी भेंट हो तो गीताली कहेगी—मानो या न मानो ; हैं ये सहायक नाद के चिह्न ! पूछेगी, इस ओवरटोन या सहायक नादों की सृष्टि स्वयं ही नहीं होती क्या ? मन की अनगिन खिड़कियों से झांकनेवाले चेहरे खुद नहीं बोलते क्या ?···बात बोलेगी, मैं नहीं। राज़ खोलेगी बात ही।··· किसी शिल्पी का जवाब गीताली के मन-वन में कौन पाखी रट रहा है !···

गीताली को हठात् मिस्त्री हारावन यन्त्रकार की याद आई। कई मुखड़ों के उभरने और बिलाने के बाद डॉट-डॉट-डॉट ! फिर मिस्त्री

खनी खोल दी। घुघलू अन्दर गया। एक कर्कश झिड़की सुनाई पड़ी—फिर किसको जुटा लाए कहां से ?…

घुघलू की दबी आवाज़ से स्पष्ट था कि वह अनुनय के स्वर में कुछ कह रहा है—मास्टर, ना बलबेन ना।—उसके सब किए-कराए पर पानी फिर जाएगा।…

बाहर खड़ी गीताली को घुघलू की यह घिघियाहट अच्छी नहीं लगी। लेकिन बेसुरे बाजे को लेकर क्या रियाज़ कर सकेगी ! वह चुप रही। एक कुढ़ी आत्मा और विकृत चेहरेवाले अधेड़ ने दरवाज़े से झांककर पूछा—क्या हुआ ?…सुर-मन्दिरवालों ने तेरह ठो बजाय दिया है बाजा का ! छोड़ जाओ, तीन दिन बाद आना।…वाह ! इसका खोल तो खूब बहारदार है। यन्त्र का यत्न भी लेती है या…?

गीताली चमत्कृत हुई थी हाराधन यन्त्रकार की बातचीत सुनकर। सधे हुए स्वर में बेकार कोई झनक कर्कशता की सृष्टि कर रही है। वह चुप ही रही। यन्त्रकार ने थोड़ी देर तक गीताली की मुद्रा को पढ़ने की चेष्टा की। फिर कहा—क्या किंतु-परन्तु सोच रही है खुकी ? यन्त्रकार का सुर कोमल हुआ—दस मिनट का काम नहीं बेसुरे को सुरवान बनाना।…आओ, अन्दर आओ !…

हाराधन के कमरे में प्रवेश करके गीताली प्रसन्न हुई थी। दीवारों पर ग्रामोफोन रेकार्ड कम्पनी द्वारा प्रचारित भारत-प्रसिद्ध कलाविदों की तस्वीरें लटक रही थीं। एकाध प्रशंसा-पत्र अथवा सर्टीफिकेट की तरह की चीज़ें ! फर्श पर विभिन्न वाद्य-यंत्र बिखरे हुए थे।…रेडियो पर वाद्य-संगीत के कार्यक्राम में सरोदवादन हो रहा था।…अकराम ! उदीयमान सरोदवादक अकराम, स्वरचित गत 'अर्चना के बोल' प्रस्तुत कर रहा था। रह-रहकर सरोद के तारों से शंख और घंटाध्वनि प्रतिध्वनित होती थी। हाराधन यन्त्रकार ने अपने छोटे, पुराने रेडियो सेट की ओर उंगली दिखाकर कहा—सुन रही हो ? सात साल हुए अकराम के इस सरोद को। अभी तक जस का तस है। यंत्र का यत्न माने यंत्र

की पूजा !···

हाराधन ने सितार, सरोद, सुरबहार, दिलरुबा, वीणा आदि के प्रसिद्ध वादकों के नाम लिए। गीताली स्वीकार करती है कि पांच मिनट के परिचय में यन्त्रकार की बातों पर विश्वास नहीं जमा सकी थी। यन्त्रकार ने भांप लिया। अपनी अटैची से कई नई-पुरानी चिठ्टियां निकालकर गीताली के सामने रखते हुए बोला—पढ़ो तो !

कलकत्ता से भारत-प्रसिद्ध (स्वर्गीय) सितारवादक उस्ताद कादिर हुसेन का आत्मीयता से भरपूर एक खत पांच साल पहले का : भाई हाराधन, तुम तो सचमुच हारा धन हो गए हमारे लिए।···मेरे यंत्र को कुछ हो गया है, फिर जिस-तिस के हाथ में देने का साहस नहीं करता। जानता हूं, तुम कलकत्ता नहीं आओगे। मैं ही आ रहा हूं तुम्हारे पास।···

रेडियो पर, तब योगेन्द्र सूरी का वायलिन हेमन्त के राग-विस्तार की तैयारी कर रहा था।···कौन कहता है कि साज़ बेजान होते हैं !

गीताली मुग्ध होती गई। छोटे-बड़े सुरशिल्पियों और उस्तादों के प्यारे-प्यारे पत्रों ने, अकराम के अर्चना के बोल ने, योगेन्द्र सूरी की वायलिन ने, घुवलू की गुरुभक्ति ने, सभीने मिलकर गीताली के सामने मिस्त्री हाराधन यन्त्रकार की आत्मा की सच्ची तस्वीर उपस्थित कर दी।···

घुघलू स्टोव जलाकर चाय की तैयारी में व्यस्त था। बीच-बीच में अपने उस्ताद की बातों में टीप के बन्द की तरह अपनी राय टांक देता—महादेवलालजी तबलिया हीरा हैं, आदमी नहीं।···खां साहब तो दाता पीर ही थे ; पाकेट से मुट्ठी-भर नोट निकालकर 'परबी' देते थे।···मुन्नूजी सरंगिया मुझसे बहुत नाराज है उस दिन से।···

घुघलू चाय दे गया। चाय की पहली चुस्की लेने के बाद हाराधन यन्त्रकार ने कहा—यन्त्रकार कहो या कारीगर। बेसुरा नहीं कह सकता कोई।—यह तो अपने किए का फल भोग रहा हूं खुकी। बेजान लकड़ी,

तार तथा सूखे चमड़े पर सुर चढ़ाकर जीवन बिताने के सिवा और क्या चारा है अब ? शापित जीवन बिता रहा हूं।…तुम मेरी नातिन की उम्र की हो। विश्वास करोगी, मैं कभी गाता था ?…मेरी आवाज़ सुनकर हिरणों के झुण्ड दौड़े आते थे।…

यन्त्रकार ने फिर अपनी अटैंची के ढक्कन को उठाया। कुछ ढूंढ़ता हुआ बोला—मैं जानता हूं, तुम विश्वास नहीं कर रही हो। खोलकर कहना होगा।…जीवद्दपुर स्टेट के राजा जीवत्स नारायण देवज्यू का नाम सुना है ? शिकार के अनुभव पर एक मोटी और मशहूर किताब लिख गए हैं अंग्रेज़ी में। उसमें देखना…पब्लिक लायब्रेरी में है वह किताब…देखना, पृष्ठ बारह, बाईस, चालीस और पचपन में मेरा ज़िक्र है। ग्रुप तस्वीर में मुझे देखकर नहीं पहचान सकता कोई अब !… राजा साहब शिकार के अलावा संगीत की भी चर्चा करते थे। उनकी शिकार पार्टी में जेफरी कॅर्डाइट ·३३३ बोर रायफल के साथ सितार की भी आवश्यकता होती। तीन-चार बड़े उस्ताद और दर्जनों शिष्य उनकी ड्योढ़ी में पलते थे। मेरे गुरुजी पंडित शिववालक झा उसी दरवार के गायक थे।…

गीताली ने अपनी घड़ी देखी। घुघलू इस बार एक गिलास चाय बनाकर ले आया। बोला…इस कथा को सुनाते समय मेरे उस्ताद इस-पिसिल चाय पीते हैं।

जेब से एक गंदा रूमाल निकालकर गिलास में लपेटते हुए यन्त्रकार ने गीताली की ओर देखा—खुकी, तुमको देर हो जाएगी। फिर किसी दिन सुना दूंगा कि कैसे हिरणों के झुण्ड दौड़ते आए थे।…

गीताली हंसी थी—आधी कहानी सुनने से आधे सिर में दर्द होता है।

—सुनने से या सुनाने से ? जो भी हो, मैं निश्चित हूं। सिर-दर्द से डरें सिरवाले। हम पेटवाले हैं !…

गीताली फिर हंसी।…जब-जब गीताली हंसती, यन्त्रकार की

दाहिनी कनपटी के पास की चमड़ी नाचने लगती। झुर्रीदार विकृत चेहरे पर एक चमचमाहट छा जाती।

—तो सुनो।···

···उस बार गुरु ने कृपा की दृष्टि हाराधन पर भी फेरी। शिकार-पार्टी में साथ चलने का आदेश दिया। अब, जंगल में मंगल मनाने की कितनी कहानियां सुनावे हाराधन! लिखने से एक मोटी किताब तैयार हो सकती है।···राजा साहब असली शिकारी थे।

···नेपाल की तराई के मधुमारा जंगल में किरात-सरदार ने चीतलों का शिकार करके दिखाया था।···तराई के जंगलों के बीच थोड़ी-सी खुली जगह, जिसको 'ग्लेड' कहते हैं अंग्रेज़ी में! चांदनी जहां लम्बे-लम्बे शालवृक्षों की फुनगियों पर टंगी नहीं रहती, श्यामल-मसृण घास पर बिछ जाती है। पास ही बहती हुई पहाड़ी नदी, जो कलकल-कुलकुल नहीं करती। हवा फुसफुसाकर बात करती है।···चांदनी, चैत की! प्रकाश में एक ठूंठ विस्मित-सा खड़ा है। छाया में कोई इशारे से कुछ कहता है और सारी तराई में, तराई के जंगलों में एक दर्द-भरी पुकार मंडराने लगी।···कामातुरा हिरणी की पुकार! नदी के शीतल जल से प्यास बुझाते हुए चीतलों के मन-प्राण में एक दूसरी प्यास जल उठती है दपदपाकर। हिरणी रह-रहकर पुकार उठती है।···चांदनी में नर चीतलों के झुंड दिखाई पड़े।···हर चीतल की देह के चकत्ते स्पष्ट-तर हो जाते हैं। प्रकाश में खड़ा ठूंठ विस्मय अथवा आवेश से हिलता-डुलता है। छाया में फिर कोई इशारा करता है—सिस्-सिस्!···फिर चांदनी में तारों की चमक···खच्च-खच्च···!

···इसके बाद मृत प्रेमियों की लाशों से अपना-अपना तीर खींचकर किरातों के दल नाचने लगे—हा-हिरा-हा-हिरा-हा-हिर्र-र्र-र्र-रा-ा!

···एक मादा चीतल को बचपन से पालकर, नकली पुकार पुकारने की बाज़ाब्ता शिक्षा दी जाती है। उस्ताद गले के नीचे उंगलियों से फुर-हरी लगाता रहता है और हिरणी समय-असमय पुकार उठती है।

…इस शिकार को देखने के बाद राजा साहब अस्वस्थ हो गए थे। पता नहीं, उन्होंने इस पद्धति से फिर कभी शिकार किया या नहीं, हाराधन के सिर पर इस शिकार का भूत सवार हो गया था, किन्तु कामांध चीतलों की चीख, कराह, छटपटाहट और दम तोड़ना देखकर उसके अन्दर का किरात आनन्द से किलकिला उठा था!…संगीत-साधना छोड़कर हाराधन किरात-सरदार के साथ भाग गया।

…हर साल चैत की चांदनी रातों में तीन-चार बार यह शिकार होता है। शिक्षिता मादा चीतल के साथ उसके शिक्षक की भी पूजा करते हैं किरातगण। ऐसी हिरणी बहुत कीमती और अलभ्य सम्पत्ति समझी जाती है।…साल-भर तक हिरणी के मांस का सुखौता आग में भूनकर खाते समय हर किरात हा-हिरा कहकर उसको स्मरण करता है।…उस बार तीनों-चारों शिकारों में हाराधन किरातों के साथ रहा। साल-भर किरातों के साथ रहकर भी वह मादा चीतल को शिक्षा देने का भेद न सीख सका। एक नम्बर पहाड़ी के जितने भी पहाड़ी गांव थे, उन सभी गांवों के बीच बस एक ही मादा चीतल थी और उसका मालिक ही एकमात्र गुणी। मूलधन हिरणी!

…किन्तु हाराधन ने इस मूलधन को सस्ता कर दिया, अपनी साधना से। मादा चीतल की क्या आवश्यकता? हाराधन कामातुरा मादा चीतल की तरह पुकार सकता है।…किरात-सरदार ने परीक्षा के लिए शिकार का आयोजन किया। चैत की चांदनी ही क्यों, जब चाहो तब शिकार करो। बारहों महीने…।

…चांदनी रात! रात का अन्तिम पहर…ब्राह्मवेला में हाराधन ने पहली पुकार दी थी—अविकल नकल!…चतरागद्दी के पास, कोसी के किनारे की सफेद-हरी भूमि पर दर्जनों चीतल दौड़े आए थे।…खच्च-खच्च…!

…हाराधन की पूजा होने लगी, एक नम्बर पहाड़ में। इलाके की सबसे अधिक सुन्दरी उसकी सेवा में तैनात हुई।…किरात-सरदार उसकी

जान का दुश्मन हो गया।···उस बार भीषण भूकम्प हुआ था—१९३४ जनवरी। भूकम्प के तीसरे दिन सभी किरातों ने स्वीकार कर लिया—यह दैवी कोप हाराधन के कारण ही हुआ है।

···भगवती की कृपा! नारी की कृपा से उसकी जान बची।··· मृगचर्म बगल में दबाए गुरु की सेवा में उपस्थित हुआ। गुरु के सामने, राजा साहब के बाग में अपने कंठ की कला प्रस्तुत करके एक नई विपदा की सृष्टि कर दी उसने।···उस बार चीतल का शिकार देखकर राजा साहब किसी मानसिक रोग के शिकार हो गए थे। बहुत दिनों तक इलाज होने के बाद कुछ स्वस्थ हुए थे कि हाराधन की पुकार सुनाई पड़ी। राजा साहब फिर अस्वस्थ हो गए।···पुराने शिकारी थे! आवाज़ सुनते ही चीख पड़े—वही, वही मादा चीतल, छलिनी हिरणी, डायन, स्पॉटेड डियर, चित्रा···! एक्सप्रेस ५०० रायफल हाथ में लेकर शब्दभेदी निशाना लेकर फायर किया। हाराधन अपनी पुकार के सम पर आ ही रहा था···उसके गुरु पण्डित शिवबालक के कलेजे में एक सॉफ्ट-नोज़्ड एक्सपैंडिंग बुलेट आकर घुस गया। हाराधन के गुरु शिष्य द्वारा समर्पित मृगचर्म पर बैठे थे।···चीतल के चमड़े पर आज भी खून के दाग हैं। ···हाराधन भागा। जहां जाता, ऐसी ही अघटक घटनाएं घटने लगीं।

कान पर हाथ रखकर हाराधन ने आंखें मूंद लीं। बोला—तब से, तभी से, गले में एक कर्कश धातव खनक पैदा हो गई।···मैंने वाणी को कलंकित जो किया था!···सुर बांधने का काम करने लगा। लेकिन··· लेकिन···!

घुघलू एक पुराना मृगचर्म ले आया अन्दर से। यन्त्रकार ने कहा—यह उस चंचल युवा नर चीतल की खाल है जो चार-चार तीर सीने पर खाकर भी मेरे पास पहुंच गया था! मेरे सामने इसने टांगें फेंक-फेंककर जान दी थी।···गुरुजी इसीपर बैठे थे, क्षण-भर!···

हाराधन यन्त्रकार ने मृगचर्म को उठाकर श्रद्धापूर्वक सिर से छुवाया। फिर गीताली के सामने रखकर बोला—उस स्वर्ण मृग का क्या नाम था,

मारीच ?···और सीताजी को उस मृगचर्म पर बैठने की वासना या लालसा ही क्यों हुई ? रामायण में कहीं है लिखा हुआ कुछ ?···कोई साधना करने के लिए ही, सम्भवतः !

हाराधन यन्त्रकार ने नेपाल तराई की श्यामल वन्य भूमि, वहां की हरी-भरी माया की डोरी से अपनी कथा को बांधते हुए कहा था—खुकी ! ···नातिन ही कहूंगा अब, नाना मानती हो तो ! अच्छा, अच्छा ! कल भी आओगी ? बहुत अच्छा !···

दूसरे दिन भी गई, गीताली। यन्त्रकार ने मिलते ही गीताली की हथेली देखने की इच्छा प्रकट की। गीताली ने अपने दोनों हाथों की तलहथी फैला दी।···हूं-ऊं ! तुम्हारी दीदी मीताली जो कुछ नहीं कर सकी, वह तुम्हारे द्वारा सम्भव होगा। निश्चय ! गीताली ने देखा यन्त्र-कार उसकी दीदी के संगीत-जीवन की छोटी-बड़ी बातों के अलावा जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं से भी वाकिफ है। यन्त्रकार ने कहा था—नातिन, बुरा मत मानना। तुम्हारी दीदी ने उस टमाटर जैसे आदमी से ब्याह करके सब कुछ नष्ट कर दिया।···ऐसे खटमल को देखा है, जो खून चूसकर लाल-गोल बूंद जैसा हो जाता है ? खटमल ही है वह व्यक्ति ! तुम्हारी दीदी का सब कुछ चूस लिया।···क्या ? साहित्यिक है ? वह क्या बला है ?···

बातचीत के बीच में कभी-कभी यन्त्रकार ऐसी ही उखड़ी-उखड़ी बातें करने लगते हैं। अपने जमाय बाबू की टमाटर और खटमल से तुलना सुनकर उसे ज़रा भी दुःख नहीं हुआ। उसने सहमति में अपनी गरदन हिलाई—ठीक कहते हैं आप ! बला ही है।···दीदी भोग रही हैं। तिल-तिलकर मर रही हैं।···

संगीत-जगत् से दिलचस्पी रखनेवाले असमय में विलुप्त हुई मीताली की प्रतिभा के लिए विभिन्न जनों को दोषी मानते हैं। कोई उसके गुरु का दोष बताता है, कोई उसके अकाल-मातृत्व की दुहाई देता है, किन्तु मीताली के पति की ओर कोई उंगली तक नहीं उठाता···जबकि दीदी

की ज़िन्दगी में घुन इसी व्यक्ति ने लगाया।···'शुचिबाय', पवित्रता का वहम !···जमाय बाबू को 'विशुद्ध' बोलने का मुद्रादोष है। अशुद्ध ? विशुद्ध···संकुचित मुख मुद्राएं !···दीदी अब बाथरूम में ही गाती है। हाथ की उंगलियों की और तलहथी की चमड़ी हमेशा पानी में रहने के कारण सिकुड़ी रहती है।···दिन-भर कपड़े धोती है।···

घुघलू भी पहचानता है मीताली 'दी को। बात में फोड़न देते हुए बोला—जिस आसर (महफ़िल) में मीताली 'दी का प्रोग्राम होता था, उसमें एकाध बार लाठी ज़रूर चलती थी भीड़ पर।···क्या हो गया ?···

होगा क्या ! उनके पतिदेव संगीत सुनकर ही मुग्ध हुए थे। संगीत में भी ठुमरी ! मीताली 'दी की ठुमरी में कुछ ऐसी विशेषताएं थीं, जिनके कारण, उन दिनों मीताली-ठुमरी नाम की एक नई धारा ही प्रचलित हो गई थी। विवाह के बाद सर्वकला-मर्मज्ञ पतिदेव ने प्यार से समझाया—मीताली रानी, ठुमरी ही गाती हो तो विशुद्ध ठुमरी गाओ। पतिदेव की इच्छा ! फिर क्या, दीदी धीरे-धीरे एक राग-विशेष के आश्रय में रियाज़ करने लगी। लखनऊ और बनारस की ठुमरी बिना किसी मिलावट के सुनाने लगी।···गुरुजी ने विरोध किया था। उन्होंने मीताली 'दी के पति को समझाने की चेष्टा की थी—ठुमरी को आंचलिक संगीत के प्रभाव ने ही अब तक पुष्ट किया है। खयाल की अनुगामिनी मात्र नहीं है। देहाती सुर से समन्वित ठुमरी, उस्ताद बड़े···।

—बड़े-बड़े उस्तादों की बड़ी-बड़ी बोलियां मत सुनाइए पंडितजी ! मैं ठुमरी का इतिहास जानता हूं।···सवाल है विशुद्धता का !···ठुमरी के नाम पर वर्णसंकर चीज़ें सिखानेवालों को मैं संगीतज्ञ नहीं मानता!···

मीताली 'दी खड़ी गुरु की फ़जीहत देखती रही। कुछ बोली नहीं !

अब तक मीताली 'दी अपनी काफी या खम्माच की ठुमरी में कभी कीर्तन, कभी भठियाली और कभी पूर्वी का स्पर्श लगा देती थी। उसकी प्रसिद्धि का एकमात्र रहस्य यही था। मूल राग से आंख-मिचौली खेलती हुई छोट-छोटी, आंचलिक रागिनियां अजाने ही श्रोताओं को मोह लेतीं।

···मीताली 'दी ने निर्दयतापूर्वक उनका परित्याग किया।···क्या सुबह-सुबह बाजूबंद खुलि-खुलि जाए, खुलि-खुलि जाए···मीताली रानी। बंद करो, भगवान के लिए।···ठुमरी···बहुरूपी···! जिस बेसेण्ट हॉल में उसकी प्रतिभा का उदय हुआ था, उसी मंच पर अस्त भी हुआ। गीताली कैसे भूल सकती है उस रात को! उस दिन गीताली के घर मातम छाया हुआ था। गुरुजी फूट-फूटकर रो रहे थे···शरदोत्सव संगीत-समारोह में मीताली 'दी अलाप के अंग को पूरा भी नहीं कर पाई थी कि हॉल मे कुत्ते-बिल्ली की बोलियां प्रतिध्वनित होने लगीं।···तरह-तरह की फब्तियां—मेटेरनिटी सेण्टर में भेजो!···कण्डेम्ड माल···बंडल!···

तीन दिन के भूखे-प्यासे-हारे गुरुजी के सामने गीताली ने प्रतिज्ञा की थी। उसी दिन गीत-व्रत लिया था गीताली ने। सरल-सुगम-सहज-संगीत को स्वतन्त्र मर्यादा दिलावेगी!···मीताली 'दी की परित्यक्ता रागिनियों को उदारतापूर्वक आश्रय दिया उसने।···

रेडियो से समाचार प्रसारित होने लगा तो गीताली को समय का ज्ञान हुआ। वह चुपचाप बैठकर यन्त्रकार को काम करते देख रही थी। यन्त्रकार आंखें मूंदकर बैठ गया।···समाचार सुनते समय वह इसी तरह आसन लगाकर बैठता।···विशाल विश्व-यन्त्र को स्पर्श करने का सुख अनुभव करता हूं, समाचार सुनते समय! समझीं नातिन!···

इसके बाद घुघलू ने रेडियो बन्द कर दिया। गीताली के तानपूरे को गोद में लेकर यन्त्रकार ने कहा—देखती है, इसमें सिर्फ चार ही तार हैं। किन्तु इन्हीं चार तारों से सात स्वर उत्पन्न होते हैं।···तुम्हारी दीदी ने सहायक नाद की उपेक्षा की। तुम ऐसा न करना। सौभाग्य से यन्त्र तुम्हारा उत्तम है।···

इसके बाद यन्त्रकार गीताली के तानपूरे से उलझ गया।···'प' स्वर में बंधे हुए तार से 'ध नि रे' ही सहायक नाद के रूप में झंकृत होगा। 'सा रे ग प' क्यों?···और इसीके साथ तुम अखिल भारतीय सुर-संगम-समारोह में भाग लेने जा रही थीं? राधे-राधे!···

गीताली को राधेश्याम की याद आई, राधे गिटारिस्ट ! जो प्रतिभा विकसित होने के पहले ही शेष हो जाए, उसके लिए किसको दुःख नहीं होगा ?…पंचरंगा जैकट और तलवार-कट मूंछे ! उन दिनों गीताली के घर बहुत आता-जाता था। गीताली के कई गीतों के साथ उसने संगत भी की थी।…उस दिन यन्त्रकार के यहां से लौट तो राधेश्याम प्रतीक्षा में बैठा हुआ था, न जाने कब से। मां रामकृष्ण आश्रम में कीर्तन सुनने गई थी।…राधेश्याम ! राधेश्याम के चेहरे को उसने गौर से देखा था।…यन्त्रकार के कथनानुसार हर कलाकार के मुख-मंडल के इर्द-गिर्द सुर-लहरी कांपती रहती है। सिम्फनी कन्सर्ट के कण्डक्टर मिस्टर रैंकिन को पहली बार देखते ही हारावन यन्त्रकार ने उसके चेहरे के आस-पास लहराती हुई सुर-लहरी को देखा था। 'सी' माइनर से 'ई' फ्लैट…पियानो, हॅर्न ओबो…क्लारिनेट…।

राधेश्याम के मुख-मंडल के पास असुर-लहरियां लहरा रही थीं। वह पीकर धुत था। गीताली की चुप्पी का गलत अर्थ लगाकर उसने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा था—डा-लिं…। डि-ड्-डि-डि-डि-डा-डि-डा-डा-आ-आ !…गी-टा-ली माई गिटा-आ…!…अकराम के अर्चना के बोल, शंख-घंटाध्वनि, धूप-गंध—राधेश्याम की गिटपिटाई बोली और शराब की गंध !…गीताली के सबसे छोटे भाई की उम्र का यह राधेश्याम !

इतनी हिम्मत इसकी ! गीताली चुपचाप अन्दर चली गई थी।…

राधेश्याम से पीछा छुड़ाया, तो जमाय बाबू के एक मित्र का आविर्भाव हुआ। गीतकार थे। जीजाजी के शिष्य थे।…उन्होंने गीताली की ज़िन्दगी के सभी गीतों का ठेका लेने की बात चलाई।…कहो तो दिन में पांच मधुर गीतों की रचना करके दिखा दूं।…तुम गीत-गीत की पंक्ति-पंक्ति में तीन बिंदियों-सी बिखरी हो, सजनी-ई, सजनी-ई, तुम…!

राधेश्याम एकाध फिल्मी धुन को लेकर जी रहा है। जमाय बाबू के गीतकार शिष्य को कोई सजनी मिल गई होगी !…

अकेली गीताली ! गीत गूंथती, सुर देती, गाती !···दस वर्ष से गा रही है । यन्त्रकार ने एक और बात बताई थी···गंध ! गीतों से गंध का परिवेशन कर सको, ऐसी साधना करो !···

तीसरे दिन यन्त्रकार का मूड बदला हुआ था । घुघलू बाहर था। गीताली चुपचाप कमरे के कोने में बैठ गई। अखिल भारतीय सुर-संगम-समारोह की अन्तिम तिथियों की घोषणा हो चुकी थी । गीताली ने यन्त्रकार से कहा···नाना, आशीर्वाद दीजिए ! निमन्त्रण मिला है ।···

घुघलू एक दोने में घुघनी और कचरी ले आया । देखते ही यन्त्रकार का मूड सुधर गया । अन्दर से गीताली का तानपूरा ले आया घुघलू । बहारदार खोल से निकालकर गीताली की ओर बढ़ा दिया यन्त्रकार ने···लो ! सुधर गया है। सबको सुधार देगा ! इसकी पूजा नहीं, तो इज़्ज़त ज़रूर करना !

गीताली ने उंगलियों से तारों को स्पर्श किया । हाराधन यन्त्रकार ने इधर-उधर देखकर कहा···मेरी एक बात मानोगी ? अपनी उंगलियां छूने दोगी ?···हां-हां··· नातिन को अचरज हो रहा है कि बूढ़े की यह क्या आदत, कभी तलहथी देखना चाहता है, कभी उंगलियां छूना चाहता है। हो-हो···गीताली की उंगलियों को उसने अपने सिर से छुलाते हुए कहा—मुझे भय था, तुम्हारे नाखून काटने का ढंग गलत तो नहीं !···उंगलियां पकड़े ही हंसकर पूछा था···की नातनी ? मने की बाजद्दे ?···क्यों ? क्या बज रहा है मन में ? क्या कहता है मन ? किस सुर में ?···

उस दिन गीताली ने हंसकर जवाब दिया था···कहां कोई अजानी रागिनी तो नहीं बजती !···किन्तु आज ?···आज वह सुनती है स्पष्ट··· एक ऐसी रागिनी, जिसको वह बांध नहीं पाती।···उसका यन्त्र नहीं हारता, वह हारने लगती है !···कहां हैं यन्त्रकार ? हैं या···?···

उस बार अखिल भारतीय सुर-संगम-समारोह में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के बाद ही नाना हाराधन यन्त्रकार को प्रणाम करने गई थी !···

सुनकर अवाक् हो गई, घुघलू सहित हाराधन यन्त्रकार फरार है। सुर-मन्दिरवालों ने औज़ार-पाती तथा बहुत-सी चीज़ों की चोरी का इलज़ाम लगाकर रपट की है।…इसके बाद, दस वर्ष हो रहे हैं।…नाना, मैं तुमको नानाधन कहूंगी।…नानाधन ! तुम अपना मृग-चर्म मुझे दो। मैं इसपर बैठकर साधना करूंगी।…करोगी ?…करोगी ? डरती नहीं ? इस अशुभ मृगचर्म से तुम्हारा कोई अशुभ न हो जाए !… मृगचर्म को सिर से छुआकर, गीताली ने एक ओर रख दिया।…इस पर बैठकर उसने साधना की है।…चीतल, चित्रा…चन्दन के चकत्ते… खून के धब्बे…डॉट-डॉट-डॉट !…

दस वर्ष बाद, आज नाना हाराधन यन्त्रकार को स्मरण करते समय मन इमन के पद-विन्यासों का व्यवहार कर रहा है।…गीताली अब स्वयं को एक यन्त्र समझती है। किसी अनचीन्हे की उंगलियां उसे छेड़ जाती हैं बार-बार !…अलख-मुखर-जगत् के व्यापार में बाधा पड़ी। तीनों जलती हुई बिंदियां बुझ गई। दरवाज़े पर डाकिया पुकारकर चिट्ठियां दे गया।…कुमारी गीताली दास…'गीत महल'…!

हे देव !…हे देवी…यह क्या ? यह सपना तो नहीं ?…क्या यह सच है ? भारत-प्रसिद्ध सितारवादक अकराम का प्रणय-निवेदन भरा पत्र है यह तो !…शंख-घण्टाध्वनि…धूप-गंध ! अर्चना के बोल !… ललित में !…विलम्बित-द्रुत !…यह कैसे सम्भव हुआ ? दस वर्ष से छिपी हुई बात फैल कैसे गई !…मां !…

अकराम के खत में स्वर है ! इसकी पंक्तियां झनक रही हैं।… शंख और घण्टाध्वनि के बीच अकराम का कण्ठ-स्वर सुनती है गीताली ! चिरसंगी तानपूरे का सहारा लेती है वह। दोनों हाथों से जकड़कर पकड़ती है।…चारों तारों से अकराम का कण्ठ-स्वर प्रसारित होता है !…गीताली ! गीताली…मैं हूं अकराम। पिछले आठ साल से सुन रहा हूं, सुन रहा हूं क्यों, उपभोग कर रहा हूं तुम्हारे गीतों की गंध।… धान कूटती हुई, चक्की चलाती हुई, ढोर चराती हुई सुन्दरियों की देह

की नमकीन गंध, धान के खेतों की, पोखर और घाट पर पानी भरती हुई सुन्दरियों के आंचल की···गंध···सुगंध···किसी वनफूल की···सुरभिमय गीतों की गायिका ने मेरी घ्राण शक्ति तेज़ कर दी है।···मैंने गीत-गंधा और गीताली गंगा नामक दो गतों की रचना की है।···उस दिन, किन्तु तुमने कंजूसी की है, या···? ऐसा न करो। मैं तुम्हारे कण्ठ से अभी तक अनगाए गीतों का अवतरण कराऊंगा। गीत-गंधा ! मैं अपना सौभाग्य समझूंगा तुम्हारा साथ···

और यह दूसरी चिट्ठी भी बोलती है खनकवाली आवाज !···खोए हुए नानाधन-हाराधन !···ओ-गो···नातिन ! शिव प्रसन्न हुए हैं। आंखें खोलो।···पिछले सप्ताह, तुमको सुनने के बाद ही मेरे घर दौड़ा आया मास्टर ! तुम्हारी नातिन का दिल छोटा हो रहा है या दिल चुरा रही है ? लेकिन तुम्हारी चीज़ की गरमी उसकी रगों में उतरी हुई थी। बड़बड़ाने लगा मास्टर। आज तुम्हारी नातिन कचनार के पेड़ के नीचे घड़ा-भर मधु लेकर बैठी थी, गीत की किताब भी थी···किन्तु···किंतु···अनेक किन्तु बोल गया···कृन्तण···यह छटपटा रहा है नातिन !···क्यों, मन में क्या बज रहा है···बहार वसंत ? स्वयंभू नाद की कृपा है सब ! जाति विचार ? शिल्पी की जाति ?···ग्राम-जाति-वादी-संवादी आदि राग को परखने के समय !···

तीसरा खत गूंगा है !···पिछले तीन साल से शुभ अवसरों पर कलापूर्ण कार्ड आंककर भेज रहा है···कलाकार। रामकृष्ण आश्रम के वार्षिकोत्सव में मंडप और वेदी आदि की रचना करके मनहर राय ने सभीका मन मोह लिया था।···गीताली वेदी के पास घण्टों चुपचाप खड़ी रह गई थी···क्षमा करना मनहर, गीताली चिर-ऋणी रहेगी तुम्हारी।···तुम चाहते तो गीताली अपना सारा रंग लुटा सकती थी।···तुमने उन क्षणों का दुरुपयोग नहीं किया।···तीन वर्ष ! तीन शून्य···गुमसुम रहे तुम, सब दिन। कलाकार !···गीताली सुरजीवी है। दस वर्ष पूर्व ही वह किसीके सुर में बंध चुकी थी।···फिर भी, तुम कुछ

बोलते···आज भी तुम्हारा खत कुछ नहीं बोलता।···अकराम शंख-ध्वनि कर रहा है।···प्यारे मनहर!···अकराम! प्यारे अकराम! तुम कितने बड़े गुणी हो! तुमने कैसे जान लिया सब कुछ!···गंध? महाराज, ये तुम्हारी ही कृपा के फल हैं। अर्चना के बोल सुनते समय मुझे जो धूप की गंध लगी थी! तुम्हींने यह गंध-परिवेशन किया है प्रथम बार! तुम्हारी ही चीज़, तुम्हींको···! लो, मैं यन्त्र हूं! तुम्हारी हूं! मुझे बजाओ, धन्य करो!···

गीताली ने पास पड़े तानपूरे के तारों को छूकर झंकृत कर दिया। मूल नाद से नौगुन ऊंचाई पर सहायक नाद उत्पन्न हुए।

···तुमने सुना होगा अकराम···नानाधन···घुघलू बैंड पार्टी में हॉर्न बजाता है···तुम सभी ने सुना···! गीताली अकराम के गले में गीत-माला डाल चुकी?···'ए' माइनर का तीव्र सुर···'एफ' मेजर का आनन्दोल्लास!···

गीताली ने परमहंस देव को नमस्कार किया। परमहंस देव के कथामृत से ध्वनि निकली—मानुषेर मन जेन सरषेर पुटली।···आदमी का मन मानो सरसों की पोटली!

गीताली की आंखों से आंसू झर पड़े। कण्ठ से एक अजानी रागिनी फूटकर निकल पड़ी।···

अलख-मुखर जगत् में अकराम की पगध्वनि सुन रही है गीताली!···
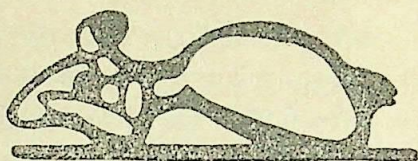
अच्छे आदमी

उजागिर ने दोनों बड़ी केतलियों को ताज़े चूल्हे पर चढ़ाकर सामने—पूरब की ओर देखा।···रात से ही 'अदरालछत्तर' (आर्द्रा नक्षत्र) चढ़ा है। सूरज उगा है या नहीं, पता नहीं चलता। बादल हल्की पुरवैया के झोंके पर उमड़े आ रहे हैं। दूर फुहिया वर्षा में पेड़ की पांतियां छिप रही हैं। सामने—खुला हुआ विशाल मैदान! हरियाली पर बिछी हुई—पिच रोड। नई सड़क!

उजागिर का जी न जाने क्यों, अचानक हलका हो गया। मन में रात-भर उस 'पसिंजर' की बोली चुभ रही थी—खच-खच!···तुम तो मुंह देखकर चाय में चीनी डालते ही हो, उधर पकौड़ी में भी हाथ-सफाई का खेला होता है। किसीको 'हरियर मिरिच' (हरी मिर्च) और अदरख के टुकड़े डालकर कुरमुरी पकौड़ी दी जाती है और किसीको सड़े प्याज और बासी बेसन की।

···ज़रूर वह पसिंजर जोगवनी या फारबिसगंज से दारू पीकर चला होगा। ऐसा मुंहफट्ट पसिंजर उजागिर ने कभी नहीं देखा था।

उजागिर ने फिर मैदान की ओर देखा!

मैदान का दाहिना हिस्सा फुहिया वर्षा में ढक-छिप रहा है। सरकारी जंगल विभाग के नये बांस के वन में हज़ारों पताके उड़ रहे हैं, मानो बांस के नये पौधों की नयी 'कंचियों' के हरे पताके—कास के सफेद गलीचे—सब ढक गए।···दो ही साल के बाद यह बांस का जंगल

'बिजूबन-बिजूखंड' हो जाएगा !

उजागिर का घर, गांव के सबसे दक्षिन-छोर पर ऊंची जगह पर है। सामने बहुत दूर तक ढालू ज़मीन है। कोसी की मारी हुई ज़मीन कोसी की सूखी और बालू से भरी धारा तक, ऊबड़-खावड़ है। कटिहार से जोगबनी तक पक्की सड़क पिछले साल ही बनकर तैयार हुई है—खुली है। जब, पहली बार कागज़वाला नक्शा धरती पर अंकित हुआ, तो लगा कि उजागिर के घर तक आने के लिए ही सड़क इधर आई है। उजागिर के घर को छूकर फिर दाहिनी ओर मुड़ गई है।

उजागिर ने देखा···लेटी हुई धरती के गले में चंद्रहार की तरह पड़ी—पिच रोड !

एक केतली का पानी गनगना उठा।

फिर दूसरी केतली का भी !

उजागिर की आंखों में 'प्रदीपकुमार की माय' के गले में पड़ी चंद्रहार की झलक लगी।···आज प्रदीपकुमार की माय इतनी सुस्त क्यों है? केतलियों में चाय का पानी खौल रहा है। अभी तक न बेसन का गमला खनखनाया और न कड़ाही-कल्छी ही। आखिर बात क्या है?

उजागिर ने अपने तीन वर्ष के एकलौते बेटे को पुकारा, "क्या हो प्रदीपकुमार ! बबुआ ! माय से कहो, सादा गाड़ी के आने का समय हो गया। इधर, हमारे 'डिपाट' का सब काम 'फिनिस' है !"

अन्दर से कोई आवाज़ नहीं आई।

उजागिर ने अपने 'डिपाट' पर निगाह डाली। उजागिर का विभाग—चाय डिपाट—कप, तश्तरी, गिलास, छन्ना, चम्मच, चाय, दूध—सब। सब ठीक है। लेकिन, आखिर बात क्या है?

उजागिर का घर, इस इलाके का 'गैरसरकारी बस पड़ाव' है। करीब, बीस-पच्चीस गांव के लोग यहीं आकर चढ़ते, उतरते हैं बसों में। दक्खिन, कटिहार से आनेवाली बस अररिया कोर्ट से डेढ़ घंटे में और उत्तर जोगबनी-फारबिसगंज से चलनेवाली गाड़ी को एक से सवा घंटे तक

लग जाता है। इसलिए उजागिर के घर और दूकान के सामने दस-पंद्रह मिनट रुकती है।

इस 'लाइन' (सड़क) में उजागिर की दूकान के पकौड़े और चाय का खूब नाम हो गया है। सादा, खाकी और लाल गाड़ियों के ड्राइवर-कंडक्टर, पसिंजर, क्लिनर, सभी तारीफ करते हैं।

प्रदीपकुमार की माय आई।

नहाई-धोई प्रदीपकुमार की माय को देखकर उजागिर का हल्का जी और भी गुदगुदा उठा। गिलास में गर्म पानी डालते हुए वह मुस्कराया। प्रदीपकुमार की माय भी तनिक मुस्कराई। मानो, मन की बात को वह मन में अब नहीं रख सका। बोल पड़ा, "अब रेडियो फिट कराना ज़रूरी है!"

कल तक उजागिर की समझ से, दूकान में एक दीवारघड़ी फिट करना जरूरी था। आज अचानक रेडियो की ज़रूरत सुनकर प्रदीपकुमार की माय को अचरज हुआ। वह अकचकाई।

उजागिर बोला, "रेडियो में एक ही बात नहीं, तीन-तीन बात हैं। मन हो तो गाना सुनो, मन हो तो खबर सुनो और जानना हो तो टैम भी मालूम कर लो।"

प्रदीपकुमार की माय ने कड़ाही चढ़ा दी।

आंगन से आंखें मलता हुआ प्रदीपकुमार निकला। उजागिर ने प्यार से बुलाया, "इधर आओ बाबू।···बबुआ!"

हर रोज़, पहला तीन गिलास···सबसे पहले प्रदीपकुमार को, फिर प्रदीपकुमार की माय को और तब खुद!···प्रदीपकुमार दिन-भर में पांच गिलास चाय पीता है!

बसों में चढ़नेवाले 'कचहरिया-पसिंजर' एक-एक कर आने लगे। बैलगाड़ी पर कोई नई दुलहिन है क्या? सावन-भादों में नैहर जा रही है। यह सायकिलवाला आकर फिर तंग करेगा। यह सायकिल रखने की ज़िम्मेवारी अब उजागिर अपने ऊपर नहीं ले सकता। ताला लगाने पर

भी नहीं।

पहली बोहनी की किसनपुर के बाबू ने, चार आने के पकौड़े और दो गिलास चाय। दूध-चीनी बराबर-बराबर, गिलास जरा बढ़िया से धोकर।

प्रदीपकुमार की माय ने घूंघट के अन्दर से ही देखा—किसनपुर के बाबू की नज़र उसकी कलाई से लेकर बांह तक गुदी हुई मछलियों पर है। कई जोड़ी मछलियां! चुलबुला रही हैं!

प्रदीपकुमार की माय ने बांह की मछलियों को आंचल खींचकर ढक लिया। किसनपुर के बाबू ने कहा, "पकौड़े तनि और खरे-कुरमुरे…।"

छनौटा में छने पकौड़ों को फिर से खौलते हुए तेल में डाल दिया प्रदीपकुमार की माय ने।

गीली पुरवैया के झोंके में गर्म पकौड़े की सोंधी-सलोनी सुगंध गांव में धीरे-धीरे फैलने लगी।

…पकौड़े! चाह! चाय! चहा!

गांव का बूढ़ा संतोखीसिंघ रोज़ इसी समय आता है।…रोज़, 'नित्तम' दिन, टैम बंधा हुआ है, यही। यदि बोहनी नहीं हुई तो परम संतोषपूर्वक प्रतीक्षा करता है। बोहनी हुई कि उसकी चुटकी बजी, "जै सिरि सित्ताराम!"

आज बोहनी होने के बाद भी संतोखीसिंघ की ओर ध्यान नहीं दिया उजागिर ने। संतोखीसिंघ ऐसे अवसरों पर कोई गप शुरू कर देता है। गप निश्चय ही किसी चोरी-डकैती अथवा 'घरघुस्सी' की होगी। घरघुस्सी में पकड़े गए चोर को 'चमचोर' कहते हैं।

आज संतोखीसिंघ ने, पास के गांव में हुई चमचोरी में पकड़े गए किसी चमचोर की कहानी शुरू की।

संतोखीसिंघ को इस इलाके के सभी नामी-गरामी लोग जानते हैं। जातिवालों ने मिलकर बूढ़े संतोखीसिंघ को बहिष्कृत कर दिया है। जाति का हुक्का-पानी छूटे, मगर संतोखीसिंघ उजागिर की दूकान की चाय और पकौड़े को नहीं छोड़ सकता। और अब तो पकौड़े-चाय

खा-पीकर ही वह सारा दिन रहता है। न आगे नाथ, न पीछे पगहा। संतोखीसिंघ रिटायर्ड दफादार है। बहुत-बहुत 'इसपी' और दरोगा के मातहत काम कर चुका है वह। जब कहीं कोई नई घटना नहीं घटती है तब संतोखीसिंघ कोई पुरानी कहानी, बिना किसी प्रसंग के ही शुरू कर देता है।

किन्तु आज की कहानी, टटकी है, जो कल रात को ही घटी है।

किसनपुर के बाबू ने, हरी मिर्च की कड़ुवाहट पर 'सी-सी' करते हुए इस बात की पुष्टि की, "हां, इसीलिए रात में उधर हल्ला-गुल्ला हो रहा था, क्यों ?···सी-सी !"

मामले को गांव के पंचों ने मिलकर 'रफा-दफा' कर दिया है, संतोखीसिंघ को यह खबर भी मिल चुकी है। मुद्दई, बेचारी साधोसाह की बेवा, क्या कर सकती है ? पांच पंच की बात से बाहर कैसे जाएं बेचारी !

प्रदीपकुमार की माय ने पकौड़ा नहीं दिया ?

उजागिर ने चाय का गिलास बढ़ाते हुए कहा, "संतोखी काका, पकौड़े गाड़ी जाने के बाद।"

"सो क्यों ?" संतोखीसिंघ ने नकद पैसा देकर खानेवाले खरे गाहक की तरह खनखनाकर पूछा।

प्रदीपकुमार की माय ने घूंघट के अन्दर से ही उजागिर को इशारे से कुछ कहा। केले के पत्ते पर गर्म पकौड़े लाकर सामने रख दिया उजागिर ने। इधर कई दिनों से संतोखीसिंघ इसी तरह तेवर चढ़ाकर बातें करने लगा है।

संतोखीसिंघ ने किसनपुर के बाबू से कहा, "रासो बाबू, यह ससुरी सड़क जब से चालू हुई है—चोरी-चुहाड़ी और भी बढ़ गई है। पहले तो साला गांव के आसपास के ही चोर-डकैत चोरी-डकैती करते थे। अब तो मनिहारी घाट का चोर साला जोगबनी आकर चोरी कर जाता है—रातोरात—बेदाग !"

किसनपुर के बाबू ने विरोध किया, "इसमें सड़क का क्या कसूर ? बिना सड़क खुले ही कलकत्ता के लोग कटिहार में पाकिट मारते हैं।"

किसनपुर के बाबू को मालूम है, सड़क बनते समय इलाके में कई सड़क-विरोधी आंदोलन हुए थे। लोगों को उभाड़ने के लिए आंदोलन के नेताओं ने इस बात को प्रमुख प्रचार-अस्त्र बनाया था—सड़क खुलते ही कलकतिया पाकिटमार से लेकर पटनिया ठग दिन-दहाड़े गांवों में घुस-कर उतपात मचावेंगे।

किसनपुर के बाबू ने अपनी कलाई पर बंधी घड़ी देखी, फिर कान के पास लाकर सुना—बस लेट है या घड़ी बंद है ?

उजागिर बोला, "दोनों तरफ की गाड़ी आज लेट है। रात में जोगबनी की ओर जोर की बरखा हुई है।"

संतोखी बोला, "पूरब भी हुई है।"

उजागिर को चोरी-डकैती की कहानी ज़रा भी नहीं अच्छी लगती। तिस पर आज चमचोरी का किस्सा !

उजागिर ने चमचोरी प्रसंग को अच्छी तरह बदलने के लिए बात की छोर अपने हाथ में ले ली, "पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन सब तरफ पानी बरसा है। सिर्फ अपने इलाके में···।"

संतोखीसिंघ ने बीच में ही काट दिया, "अरे ! इस इलाके में क्या पानी होगा ! साला, दिन-दहाड़े चमचोरी जहां होता है, वहां पानी बरसेगा। बज्जर गिरेगा—हड़हड़िया बज्जर !"

बादल सचमुच गरजा ! प्रदीपकुमार की माय घूंघट के नीचे हंसी। "बादल नहीं, बस की आवाज़ !"

प्रदीपकुमार की माय को पिछले साल की बरसात की बात याद आई। वर्षा में पकौड़े और चाय की बिक्री बढ़ जाती है। छाता-धोती बंधक रखकर भी आदमी पकौड़ी खाकर चाय पीता है !

किसनपुर के बाबू ने थैले से, 'प्लास्टिक पेपर' के बड़े थैले से वाटर प्रूफ निकाला। मलेरिया-विभाग के दवा छिड़कनेवाले से बहुत पैरवी के

बाद यह बरसाती मिली है। झमाझम पानी पड़े मुदा कपड़े का एक सूत भी नहीं भीगता।

किसनपुर के बाबू ने उठते-उठते उजागिर को सलाह दी, "इधर, चार हाथ और बढ़ाकर बैठने की जगह बनाकर छवा क्यों नहीं देते ?"

प्रदीपकुमार की माय ने बांह के ऊपर साड़ी खींचकर उजागिर से कुछ कहा। किसनपुर के बाबू की आंखों में गुदी हुई मछलियां फिर चुल-बुलाने लगीं।

उजागिर ने कहा, "रासोबाबू ! एक गाड़ी बांस के बिना सब काम रुका हुआ है। आपके दरबार में एक दिन 'इस्दुआ' लेकर···!"

किसनपुर के बाबू ने देखा, घूंघट से एक जोड़ी आंखें भी कुछ कह रही हैं। बोले, "अच्छी बात है। एक दिन आना। एक गाड़ी क्यों, दो गाड़ी बांस मिल जाएगा।"

उजागिर ने दांत निपोड़कर प्रदीपकुमार की माय की ओर देखा प्रदीपकुमार की माय ने आंखों से ही बातें कीं, "मैंने कहा था न, रासो-बाबू अच्छे आदमी हैं।"

संतोखीसिंघ बोला, "एक गाड़ी घास क्यों नहीं मांगी तुमने ! आज रासो बाबू का दिल 'दरियाव' हो गया है।"

वर्षा शुरू हुई। दोनों ओर से बस आई, एक ही साथ ! ···पकौड़ी ! चाय ! पैसे। नये पैसे।

उजागिर को आज बात करने की फुरसत नहीं।

"एक पत्तल पकौड़ी, बिना मिर्च की।"

प्रदीपकुमार की माय ने घूंघट के नीचे से ही कुछ कहा। वह आज बिना मिर्च की पकौड़ी अलग से किसी गाहक के लिए नहीं बना सकेगी !

"लाल गाड़ी के ड्राइवर जी मांगते हैं !"

प्रदीपकुमार की माय बिना मिर्चवाला बेसन फेंटने लगी।

लाल गाड़ी का ड्राइवर अच्छा आदमी है। मनिहारी घाट में जहाज से उतरनेवाले यात्रियों को भी वह उजागिर की दूकान की पकौड़ी औ·

चाय की तारीफ सुनकर फांस लाता है—'भाई, रास्ते में कहीं चाय पीना और पैसा फेंकना बराबर है। चाय, नाश्ता चलकर रहिकपुर में कीजिएगा। एक बार चखकर देखिएगा, तो फिर कभी नहीं भूलिएगा। गर्मागर्म चाय और कुरमुरे पकौड़े!'

लाल गाड़ी का ड्राइवर ऐसी जगह पर गाड़ी लगाता है, जहां से प्रदीपकुमार की माय की आंखें, तिरछी निगाह से देखने पर टकरा जाती हैं।

गाड़ी में बैठे हुए यात्रियों की नज़र दूकान के सामनेवाले हिस्से पर ही पड़ती है। जिधर प्रदीपकुमार की माय बैठती है उधर बांस की 'झझनी' की टट्टी लगी हुई है—छोटी-सी, आड़ में बैठी हुई प्रदीपकुमार की माय का सिर्फ हाथ दिखलाई पड़ता है। पकौड़े डालती हुई अंगुलियां! छनौटे से पकौड़े निकालकर बर्तन में रखते समय कांच की चूड़ियां मीठे सुर में बज उठती हैं।

उजागिर को इधर-उधर देखने की छुट्टी कहां?

गिलास, चीनी, पानी, पत्ती, चम्मच, पैसा, गाहक!

पत्तल पकौड़ा लेते समय एक बार वह प्रदीपकुमार की माय की ओर जरूर देख लेता है, "देखिए भाई, हल्ला-गुल्ला नहीं। शांती से—शांती से!"

दोनों गाड़ियां आकर चली गईं।

प्रदीपकुमार की माय उठकर अन्दर गई। उजागिर रेजगारियों का हिसाब करने लगा।

संतोखीसिंघ को एक गिलास चाय और चाहिए। ज़ोरों की बारिश शुरू हुई।

उजागिर ने कहा, "पानी गरम होने दीजिए।"

उजागिर ने लड़कपन से ही चाय बनाने का काम किया है।

कमलदह के जमींदार की ड्योढ़ी में हर काम के लिए अलग-अलग

नौकर-चाकर थे—चाय बनानेवाला, चिलम सुलगानेवाला, तेलमालिश करनेवाला, भंग घोटनेवाला !

कमलदह के ज़मींदार की ज़मींदारी चली गई। लेकिन, उजागिर के हाथ का 'इलम' हाथ में ही रह गया। इसी 'इलम' ने उसकी मनोकामना पूरी की। घर में लक्ष्मी आई···!

रहिकपुर गांव की अपनी बपौती ज़मीन पर घर बनाकर एक 'रूपवाली' घरनी लाने की लालसा उसके मन में बचपन से ही घर बनाकर बैठी थी। कमलदह के छोटे बाबू की दुलहिन जैसी घरवाली मिल जाए, तो उजागिर सारी उम्र सिर्फ 'रूप' पीकर रह सकता है।

रूपवाली दुलहिन !

बालूवाली जमीन का कूप और गांव की लड़की का रूप—दोनों बराबर। बालूवाली ज़मीन के कूप का पानी 'कंचनठंढा' होता है। एक घूट पीकर ही आत्मा जुड़ा जाए। गांव की लड़की का रूप, एक बार निहारकर नींद आ जाती है, आंखों में। लेकिन बलुवाही कूप दो साल में ही 'भथ' जाता है। गांव का रूप साल लौटते ही 'ढल' जाता है।

उजागिर ने भागलपुर, दरभंगा और पटना जैसे शहरों में घूम-घूमकर नौकरी की। कहीं रूप की झलक नहीं मिली। सब नकली—कच्ची कली कचनार जैसी ऊपर से।···इसको भला रूप कहते हैं ?

शहर से वह रुपये की गठरी ले आया। मन की झोली उसकी खाली ही रही।

गांव के 'घटक-दलालों' ने उजागिर को ठगकर बहुत पैसा खाया। बिरादरी के पंचों ने पान-सुपारी के नाम पर पचासों रुपये 'झीट' लिए—रूपवाली घरनी नहीं मिली।

किन्तु उजागिर निराश नहीं हुआ। कमलदह की छोटी दुलहिन ने एक दिन कहा था, "उजागिर, चाय पिलाकर तुम इन्द्रासन की परी को भी 'फुसला' कर मुट्ठी में कर सकते हो !"

उजागिर ने छोटी दुलहिन की बात याद की और एक दिन घर से

निकल पड़ा—कहीं चाय की दूकान पर नौकरी भी मिल जाए, वह करने को तैयार है।

उजागिर उस (शुभ) दिन को कभी भूल सकता है भला ?

कुरसेला स्टेशन पर उतरकर वह बहुत देर तक बैठा रहा।

खीरा खरीदकर खाते समय उसको बचपन के एक खेल की याद आई थी। बच्चे खीरे-ककड़ी के बीज को अंगुलियों में दबाकर कहते, "फलान की शादी किधर होगी ? बीज छिटकर जिस ओर गिरे—उधर ही। उसी दिशा में।"

उजागिर ने खीरे के एक बीज को अंगुलियों में दबाकर मन ही मन में कहा था, 'बीज जिस ओर छिटकेगा, मेरी होनेवाली रूपवती दुलहिन उधर ही होगी।'

बीज उत्तर की ओर छिटका और बिना कुछ सोचे-विचारे वह कुरसेला से रानीगंज जानेवाली बस पर जा बैठा था।

कंडक्टर ने पूछा, "कहां जाएगा ?"

उजागिर क्या जवाब दे ? न जाने यह गाड़ी कहां-कहां जाती है। तब तक बगल के यात्री ने बिरौली का टिकट मांगा और उजागिर ने भी बिरौली तक का टिकट कटा लिया।

गाड़ी बिरौली पहुंचकर पकौड़ीवाली सहुआइन की दूकान के सामने रुकी। बिरौली में उतरनेवाले उतर गए। उजागिर बैठा रहा। बिरौली गांव में उतरकर वह क्या करेगा ? वह आंखें मूदकर कुछ सोच रहा था कि कंडक्टर ने उसको ठेलकर जगाया, "ए बिरौली आ गया। उतरो।"

उजागिर ने अपनी झोली संभाली। अनिच्छापूर्वक उतरा।

बस से उतरे हुए लोग पकौड़ीवाली दूकान पर थोड़ी देर रुके और जलपान करके चले गए। उजागिर चुपचाप बगल में एक मोढ़े पर बैठा रहा। बूढ़ी सहुआइन ने पकौड़ी की कढ़ाई उतारकर उजागिर से पूछा, "कहां जाना है ?"

उजागिर ने कुनमुनाकर जवाब दिया, "कहीं नहीं। एक आने की

पकौड़ी हमको भी चाहिए।"

बूढ़ी झुंझलाई, "इतनी देर से मुंह सीकर बैठे रहे। अब कड़ाही उतारने के बाद, एक आने की पकौड़ी ! अब पकौड़ी नहीं, बैंगनी खाना है, तो बोलो चढ़ाऊं कड़ाही ?...अरी ओ सितिया ! कब तक बैठकर बैंगन काटेगी ! एं ? दे जा, जितना हुआ है। गाहक बैठा हुआ है यहां।"

झोपड़े के अन्दर से उसी अंदाज से पतली आवाज़ में जवाब आया, "कल से मैं काना-कुबड़ा बैंगन नहीं काटूंगी। एक-एक बैंगन में पांच-पांच पिल्लू !"

बूढ़ी ने सितिया नाम की लड़की को 'बैंगन लगाकर' एक भद्दी-सी गाली दी।

सितिया सूप में बैंगन के टुकड़े लेकर आई, "मैं रोज़ तुमसे कहती हूं मौसी, परदेसी जातरी के सामने गाली मत बका करो।"

उजागिर सितिया उर्फ सीता का रूप देखकर पसीने से तर-बतर हो गया था! एक-एक बैंगन में पांच-पांच पिल्लू और बैंगन-भरी गाली सुनकर उसको मतली आ रही थी, सो सीता को देखने के बाद ही दूर हो गई। ...यही है रूप ! यही है रूप !

उसने गला साफ किया, "माताराम ! एक आने की बैंगनी नहीं, चार आने की।"

बूढ़ी बोली, "ऊं ! ई आदमी का मन रह-रहकर बदलता है। जो बोलना हो, एक ही बार क्यों नहीं बोलते ?"

उजागिर चुप रहा। किन्तु गाहक का पक्ष लेकर बोली सीता, "एक बार बोले, चाहे हजार बार—तू इस तरह गाहक से बात-बात पर 'रगड़' करेगी, तो एक पाई की बैंगनी भी नहीं बिकेगी।"

बूढ़ी कढ़ाही में बैंगनी डालती हुई बोली, "बड़ी आई हैं 'भतार' का पच्छ लेने !"

जब बूढ़ी और जवान जीभों की 'बतकुट्टी' जोर पकड़ने लगी, तो

उजागिर ने मर्दानगी दिखलाई, "छिः-छिः, आप लोग इस तरह बेवजह लड़िएगा तो रखिए अपनी बैंगनी ! ऐसी बैंगनी कौन खाए ?"

सीता बोली, "लो, सुनती है ? अब छानो बैठकर चार आने की बैंगनी। देखूं कौन खाता है ?"

बूढ़ी बोली, "नहीं खाएगा, तो पैसा दे जाएगा।"

सीता ने उजागिर को पहली बार नज़र उठाकर देखा और मुंह की बात मुंह में ही रखकर अन्दर चली गई।

उजागिर बैठकर सोचता रहा, 'चार आने की बैंगनी वह खा सकेगा ? यह चंगेरी-भर बैंगनी !'

बूढ़ी सहुआइन ने फिर पुकारा, "अरी, ओ सितिया ! पत्तल कहां है ? बैंगनी तेरे कपाल पर परोसूं ?"

उजागिर बैंगनी खाने लगा। तब बूढ़ी ने नरम सुर में कहा, "भैया, बुरा मत मानना। मुंहजली सितिया सीधी बात कभी सुनती ही नहीं। ठहरो, मैं पानी ला दूं।"

बूढ़ी के उठने के पहले ही सितिया पानी दे गई, "मैं जानती हूं। अब गाड़ी आने का समय हुआ तो, तू कोई न कोई बहाना बनाकर चूल्हे के पास से उठेगी ही। कड़ाही उठाकर सड़क पर फेंक दूंगी। हां !"

बूढ़ी बैठ गई फिर। वह कोई भद्दी गाली जीभ पर चढ़ा रही थी कि उजागिर ने टोक दिया, "यहां एक चाह की दूकान खूब चलेगी, माताराम ?"

सहुआइन ने पोपले मुंह को तनिक विकृत करके पूछा, 'क्या चलेगी खूब ?"

"चाह की दूकान।"

"कौन खोलेगा ?"

"कोई भी खोले, चलेगी खूब।"

बूढ़ी अब कुढ़कर बोली, "आग लगे चाह की दूकान में। एक पकौड़ी के चूल्हे में ही मेरी हड्डी जलकर 'छार' हो रही है।"

सीता ने इस बार फिर उजागिर को देखा। चाह की दूकान की बात सुनकर ही उसने ऐसी निगाह से 'हेरा' है। उजागिर बोला, "चाह में अठगुना नफा है। चार आने के माल में दो रुपये मुनाफा !"

"दो रुपये !" बूढ़ी मौसी और जवान सीता ने एक ही साथ अचरज-भरे स्वर में कहा, "दो रुपये !"

बूढ़ी कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोली, "रहने दो, बाबा, मुनाफा। यहां चाह कौन पिएगा ?"

सीता ने कहा, "मिलने पर सभी पिएगा।"

उजागिर बोला, "वाजिब बात।"

बूढ़ी ने छनौटा चमकाकर पूछा, "मैं पूछती हूं, चाह बनाएगा कौन, तेरा भतार? एं ?"

सीता ने इस बार जवाबी गाली दी, "मेरा नहीं, तेरा !"

आश्चर्य ! गाली सुनकर पोपली बूढ़ी हंस पड़ी। सीता भी हंसी और उजागिर का कलेजा ज़ोर से धड़कने लगा। कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने तौलकर बात शुरू की, "हां, चाह की दूकान तो मर्द-पुरुष ही चला सकता है।"

बूढ़ी ने लम्बी सांस ली। सीता फिर आंगन के अन्दर चली गई।

उजागिर बहुत देर तक बूढ़ी मौसी को विस्तारपूर्वक चाय की दूकान की योजना के सम्बन्ध में समझाता रहा।

दूसरी गाड़ी के लौटने के पहले ही उजागिर ने बूढ़ी को अपनी मीठी बोली से मोह लिया, "माताराम ! आप लोगों की मर्जी हो तो मैं आज ही जाकर सामान ले आऊं।"

"तुम्हारा घर कहां है ?"

"रहिकपुर।"

"कौन जात ?···अरे, तब तो बिरादरी के ही निकले।"

बात पक्की हो गई।

उजागिर कुरसेला बाज़ार आया और चाय की दूकान का सारा

सामान खरीदकर रात की गाड़ी से ही वापस लौटा। बूढ़ी ने कहा, "अरे, तुम सचमुच लौट आए? मैं तो समझ रही थी कि कोई लुच्चा-लबड़ा आकर ऊन का दून हांककर चला गया।"

अन्दर सीता ने झिड़की दी, "मौसी, तू बूढ़ी हुई, लेकिन आदमी को पहचानना नहीं आया।"

चाय की दूकान का सामान देखकर बूढ़ी और जवान आंखें अचरज से बड़ी हो गईं, "इतना सामान लगता है चाह की दूकान में?"

रात में सीता ने अपने हाथ से भात-दाल परोसकर खिलाया था—पहली बार। पुरानी बातें याद करके आज भी उजागिर की देह सुड़-सुड़ाने लगती है। सीता की बोली, सीता की हंसी! सीता का चलना-फिरना! दिन-रात उजागिर मानो सपनों की दुनिया में ही रहता था—रूप पीकर जीता था।

चाय की दूकान खुली और चल निकली।

गांव-भर में बात फैल गई, 'बूढ़ी सहुआइन का एक रिश्तेदार आया है। चाय की दूकान खोले है। अब पियो घर बैठे—चाह गरमागरम!'

बस के ड्राइवर, कंडक्टर, पैसेंजर, क्लीनर ने एक स्वर से प्रशंसा की, "अलबत्त चाह बनाता है जवान! चलेगी दूकान।"

लेकिन, चाय की दूकान छः महीने भी नहीं चल सकी। पांचवें महीने में ही सीता ने उजागिर को उकसाया, "क्यों? तुम्हारा कलेजा इतना छोटा है? बूढ़ी से साफ-साफ कहते क्यों नहीं?"

"यदि बूढ़ी 'नकार' जाए?"

"बला से। पहले कहके देखो।"

"यदि कहे 'घरजमाई' रहना पड़ेगा?"

"अभी मान लेना। बाद में फिर···।"

बूढ़ी मौसी आंख से कम देखती थी और कान से ज़रा कम सुनती थी। किन्तु बिना कुछ देखे-सुने ही वह सब कुछ समझ चुकी थी। इसलिए जिस दिन उजागिर ने हकला-तुतलाकर प्रस्ताव किया था, बूढ़ी

ने एक भद्दी गाली दी थी, "सौ बार सतुअन और भतार के आगे दतुअन। अब बाकी ही क्या रहा है ?···छुतहर-कलस में अब कौन पण्डित-पुरोहित वेद-मंतर पढ़ेगा ?···खूब पियो गरमागरम चाह !"

बूढ़ी सहुआइन अपनी पकौड़ी की दूकान पर बैठी आज भी गालियां दे रही होगी, "उस मिठवचना ने आते ही चाह पिलाकर इस मुई को मुट्ठी में कर लिया।···दिन-रात खुसुर-फुसुर मैं नहीं देख सकती थी।" जवाब दे दिया—"तुम लोग अपना रास्ता देखो।"

और, इसीको कहते हैं 'तिरिया के भाग से मिले राज !'

सीता नहीं, लक्ष्मी !

रानीगंज से कुरसेला जानेवाली बस पर सवार होकर, रूपवाली दुलहिन को साथ लेकर उजागिर गांव लौट आया। लौटकर उसने सुना, "इधर भी नई सड़क खुलनेवाली है। बहुत जल्दी ही !"

सचमुच, लक्ष्मी है प्रदीपकुमार की माय !

बननेवाली नई सड़क के ठेकेदार ने उजागिर की झोंपड़ी में ही डेरा डाला था।

गांव के लोगों ने घुमा-फिराकर उजागिर को समझाया, "घर में जवान और खूबसूरत बहू और बाहर 'पलानी' में परदेसी का वासा, अच्छी बात नहीं।"

संतोखीसिंघ जब मिलता, दिन दहाड़े 'चमचोरी' की कोई कहानी सुनाना नहीं भूलता। उजागिर घर लौटकर अपनी रूपवती को निहारते हुए कहता, "जानती हो ? गांव के लोग क्या कहते हैं ?"

"गांव के लोगों की बात सुनोगे या ठेकेदारजी की ? ठेकेदारजी कहते हैं, सड़क जब खुलेगी, चाह और पकौड़ी की दूकान तब खोलना। अभी इतने 'जन-मजूरे' काम कर रहे हैं। अभी चावल-दाल की दूकान खोल दो। मजदूरों को उधार खिलाओ और हफ्ता के बाद एक का डेढ़ वसूलो। यही मौका है।"

"सच ? और यदि उधार खाकर भाग जाएं सभी—तब ?"

"भागकर कहां जाएंगे ? उनकी चुटिया तो ठेकेदारजी के हाथ में है।"

"सच ? तुम ठीक कहती हो बिरौलीवाली। ठेकेदार साहब सचमुच बहुत अच्छे आदमी हैं।"

"ए ! तुम मुझे बिरौलीवाली क्यों कहते हो ? मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"तब क्या कहूं ?" उजागिर खिलखिलाकर हंसता, "ओ ! अब मैं भी ठेकेदार साहब का दिया हुआ नाम ही कहूंगा, रेशमबहू। ठेकेदार साहब सचमुच बहुत अच्छे आदमी हैं।"

गांव के आवारा नौजवानों ने उजागिर को चिढ़ाने के लिए एक बोली निकाली, "ठेकेदार साहब सचमुच अच्छे आदमी हैं।"

अच्छा आदमी को अच्छा आदमी नहीं कहे, तो क्या कहे ? गांव के लोग जलते हैं। उजागिर की बहू रूपवती है। सुलच्छनवाली है। है किसीकी बहू ऐसी, गांव में ? जिसके आते ही गांव में नई सड़क खुल गई, इलाके में ! चावल-दाल की छोटी-सी दूकान खोलकर, पांच ही महीने में दस बीघे ज़मीन किसने खरीदी है ? लोग तो जलेंगे ही। ठेकेदार साहब अंग्रेजी में चिट्ठी लिखते हैं। है कोई अंग्रेजिया इस गांव में ? रेशमबहू ठीक ही कहती है—काम ऐसा करो कि 'देख पड़ोसी जल मरे।'

बबुआ का जब जन्म हुआ, तो ठेकेदार साहब ने चमड़े की थैली से पचीस रुपये निकालकर मुंह-दिखाई दी थी। छठी की रात में, खुशी के मारे रात-भर बैठकर रमैन बांचते रहे। और यह प्रदीपकुमार नाम भी उन्हींका रखा हुआ है। गांव के दुखमोचन पंडित ने तो बस, पतासू नाम रख दिया था। भला, पतासू भी कोई नाम है !

पता नहीं ठेकेदार साहब आजकल किस इलाके में हैं। कहीं भी रहें, आदमी अच्छे हैं। प्रदीपकुमार की माय आज भी हर महीने याद करती है। बोले थे कि बीच-बीच में आकर प्रदीपकुमार को देख जाएंगे।

उस दिन छितनू का रमडोलवा बेटा कह रहा था कि प्रदीपकुमार

का मुंह ठीक ठेकेदार साहब जैसा है। पगला है साला !

लाल गाड़ी के ड्राइवर जी भी बहुत भले आदमी हैं। रोज़ कहते, 'देखो, उजागिर भाई, चूल्हे के पास बैठते-बैठते प्रदीपकुमार की माय का रंग बादामी हो गया है। देह में गमकौआ पौडर लगाने से रंग ठीक रहेगा।' और दूसरे ही दिन एक डिब्बा पौडर खरीदते आए—पुरनिया साहा कम्पनी से। ऐसा भला आदमी, इस गांव में क्या, इस इलाके में भी खोजने पर मिलेगा ?

यह नये दारोगा साहेब भी हीरा आदमी हैं। कह रहे थे, इसपी साहेब तुम्हारे पकौड़े की खूब तारीफ करते हैं। और, जोगबनी के लाला के बेटे की जीभ तो पकौड़े के नाम से ही 'पनिया' जाती है। बारह बजे रात में, गाड़ी पर दारोगा साहेब के साथ आता है और चुराकर पकौड़े खाता है। वैष्णव लाला, जिसके चौके में प्याज नहीं चढ़ता है कभी, वह उजागिर की दूकान में बैठकर कैसे खा सकता है प्याजवाले पकौड़े ? प्रदीपकुमार की माय कहती है, लाला का बेटा एकदम गौ जैसा सीधा है। ज़रा दुलला-पतला है, इसलिए पकौड़े के साथ चाह नहीं, अंग्रेज़ी दारू पीता है। उस रात को प्रदीपकुमार की माय की देह में दर्द था सांझ से ही। दारोगा साहेब ने कहा—एक गिलास ले आओ ! एक घूंट पीते ही सब दर्द छूमंतर हो जाएगा। सचमुच ! हुआ भी वही। सांझ से ही कुहरती हुई प्रदीपकुमार की माय टनटनाकर उठ बैठी और लाला के बेटे से मुंहा-मुंही गप करने लगी। लक्ष्मी है प्रदीपकुमार की माय !

तीन बजे वाली गाड़ी आ रही है !

"कहां हो, बबुआ ! माय से कहो कि तिनबज्जी गाड़ी आ रही है। मेरे डिपाट का सब काम रैट है।"

"बबुआ ! प्रदीपकुमार ? माय कहां ?"

प्रदीपकुमार सुबह की मीठी नींद में सोया हुआ था। उजागिर चुप-चाप बैठकर बीड़ी पीने लगा। आज इतना सवेरे ही प्रदीपकुमार की

माय उठकर कहां गई है ? तबियत खराब है क्या ? नहीं, लाल गाड़ी के ड्राइवर जी ठीक ही कहते हैं—जान है तो जहान है। प्रदीपकुमार की माय दिन-भर चूल्हे के पास बैठी रहती है, यह ठीक नहीं। पकौड़ी बनाने के लिए, सुगनी की माय को मज़दूरी देकर रखना होगा।

उजागिर बैठा रहा। जब भुरुकुवा तारा डूब गया और उजाला हुआ और प्रदीपकुमार की माय कोठरी में नहीं आई, तो वह बाहर निकला। बाहर बर्तन-बासन सब बिखरे पड़े हैं। दोनों लोटे भी हैं। तब कहां गई ?

उजागिर ने कोठरी में आकर देखा—पेटी खुली पड़ी हुई है—रेशमी साड़ी और रेशमी बिलौज क्या हुआ ? लगा, धरती अचानक घूमने लगी। उसने चिल्लाकर अपने बेटे को जगाया, "बेटा ! बबुआ ! ! प्रदीपकुमार—माय कहां ?"

प्रदीपकुमार उठकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा, "मैया कहां आंऽ आंऽ आं !"

प्रदीपकुमार को चुप कराने के लिए उजागिर ने अपने को संभाला। फिर बोला, "बेटा, माय गंगा तीर का मेला गई है। दोपहर की बरबज्जी (बारह बजेवाली) गाड़ी से आवेगी।"

उसने अपने मन को भी समझाया, 'कहां जाएगी ? कहीं काम से ही गई होगी।'

सुबह की गाड़ियों के आने का समय हुआ। संतोखी सिंघ ठीक समय पर ही आया। उसने आते ही टोका, "आज पकौड़ी का चूल्हा नहीं सुलगा है ?"

उजागिर ने जवाब दिया, "प्रदीपकुमार की माय की मौसी का संवाद आया कि वह लबेजान है। इसलिए रात की गाड़ी से ही चली गई।"

प्रदीपकुमार ने कहा कि, "मैया गंगा-तीर का मेला गई है।"

संतोखी सिंघ ने पुराने दफादारी की तरह जिरह करते हुए पूछा, "रात में तो सादा गाड़ी लौटी नहीं। फिर किस गाड़ी से गई ?"

उजागिर ने आज बिना 'बोहनी' हुए ही संतोखी सिंघ को चाय का

बड़ा गिलास दिया। संतोखी सिंघ ने चाय पीते हुए कहा, "जमाना बहुत खराब है। जनाना जात अकेली बाहर जाए···।"

दोनों ओर से गाड़ियां आईं। उजागिर ने लाल गाड़ी की ओर देखा ···नया ड्राइवर? 'लालगाड़ी के ड्राइवर जी कहां गए?' 'छुट्टी में?' 'कितने दिन की छुट्टी?' 'आज पकौड़े नहीं, सिर्फ चाह मिलेगा, भैया!'

दोपहर के बाद उजागिर ने दूकान बन्द कर दी।

उसका दिल अंदर ही अन्दर टूटने लगता। तब, वह ज़ोर-ज़ोर से रोना चाहता। लेकिल प्रदीपकुमार का मुंह देखकर वह अपने को संभाल लेता। वही रोने लगेगा तो, बच्चे की क्या दुर्दशा होगी।

"बप्पा! बरबज्जी गाड़ी आ रही है।"

प्रदीपकुमार की माय नहीं आई? "बेटा, अभी नहीं आई तो 'तीन-बज्जी' गाड़ी से आवेगी।"

"बप्पा! तिनबज्जी गाड़ी आ रही है।"

"नहीं आई!"

इस बार बाप-बेटा मिलकर आंगन में रोने लगे। जब प्रदीपकुमार हिचकियां लेते हुए दांत पर दांत बैठाकर घिघियाने लगा, तब उजागिर को होश हुआ। उसने आंसू पोंछकर कहा, "रात की गाड़ी से ज़रूर आवेगी। तुम्हारे लिए बिस्कुट लावेगी।···खिलौने!"

प्रदीपकुमार की माय रात की गाड़ी से ही आई।

"आ गई, मैया! मैया आ गई!"

प्रदीपकुमार ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। उजागिर भी रोने लगा, "कहां चली गई थीं तुम, प्रदीपकुमार की माय-य-य?"

"लो लो,! क्या हो गया है तुम दोनों को?"

"कहां गई थीं? किस गाड़ी से गईं?"

"काम से गई थी, पुरैनिया। गाड़ी से नहीं, ट्रक से गई थी।"

"कहकर जाती।"

"काम के पहले, बात कही नहीं जाती।"

प्रदीपकुमार खिलौना पाकर खुश हो गया। उसकी मां ने गठरी से बिस्कुट का डिब्बा निकाला। उजागिर चुपचाप, अपलक दृष्टि से देखता रहा—कितने दिनों के बाद प्रदीपकुमार की माय ने रेशमी साड़ी पहनी है।···रूप जरा भी मलिन नहीं हुआ है। कौन कहता है कि गांव का रूप साल लौटते ही ढल जाता है।

अब, प्रदीपकुमार की माय ने आंचल के खूंट से कागज़ का एक टुकड़ा निकालकर दिखलाते हुए कहा, "बोलो तो क्या है?"

उजागिर ने लालटेन की रोशनी में कागज़ को उलट-पलटकर देखा, "भगवान जाने क्या है! बोलो न, क्या है? देखने में तो तो सरकारी कागज़ जैसा लगता है।"

प्रदीपकुमार की माय हंसी, "ठीक ही पहचाना है तुमने। सरकारी कागज़ ही है।···परमिट!"

"परमिट? किस चीज़ की परमिट?"

"सिमेंट, कोयला और लोहे के छड़ की।"

"क्या करोगी परमिट?"

प्रदीपकुमार की माय बोल उठी, "गांव के दुश्मनों को जरा और भी अच्छी तरह जलाऊंगी।"

"जलाएगी! माने? ओ-हो, समझा। पक्का घर एं? सच कहता हूं, प्रदीपकुमार की माय, तुम धन्न हो। अच्छा किया तुमने जो मुझसे पहले ही नहीं कहा। इतनी बड़ी बात मेरे पेट में हरगिज नहीं पचती। सच कहता हूं, मैं पागल हो जाऊंगा। सच, तुम लछमी हो—साच्छात!"

"मैंने क्या किया? सब लाल गाड़ी के ड्राइवर जी की मेहरबानी है। हाकिम के किरानी से उनकी दोस्ती है।···और जानते हो—इसी परमिट से घर बनाने का आधा रुपया भी निकलेगा।"

"सो कैसे?"

"देखना, आने दो लालाजी के बेटे को।"

"सच? हद है! हद है! कल साले संतोखीसिंघ को पांच गिलास

चाय बोहनी के पहले ही पिलाऊंगा।...अब तुमको क्या कहें, प्रदीपकुमार की माय ?"

"रेशमबहू !"

"हि हि हि हि !"

उजागिर के घर की नींव पड़ गई। एक वांस में पुराना झाड़ बांधकर गाड़ दिया गया—बुरी नज़र को काटने के लिए। गांव के लोग मन ही मन जल-भुनकर खाक होने लगे।

किन्तु इधर कई दिनों से उजागिर का मन भी अन्दर ही अन्दर सुलग रहा है। न जाने क्यों ! परमिट का कागज़ लालाजी के बेटे को देकर, ईंट-सिमेंट-लोहा लिया गया। ठीक है। लालाजी के बेटे ने परमिट लेते समय प्रदीपकुमार की माय की अंगुलियां टीप दी थीं। इसमें भी कोई हर्ज नहीं। दारोगाजी ने उस दिन दारू के झोंक में कबूतरी कह दिया। सरकारी आदमी का सात खून माफ है। लाल गाड़ी के ड्राइवर जी ने होली के दिन गाल पर अबीर लगा दिया। होली की बात ! फिर ड्राइवर जी भले आदमी हैं। लेकिन...

केतली का खौलता हुआ पानी टोंटी से गिरने लगा। प्रदीपकुमार की माय ने कहा, "लो, लो। तुम्हारा ध्यान कहां है ? होश में हो या...?"

उजागिर बोला, "ख़ूब होश में हूं।"

उसने केतली उतार दी। मकान बनानेवाला यह छुछुंदर-मुंहा राजमिस्तरी बिना कहे-सुने आंगन के अन्दर क्यों गया ? जाने के पहले प्रदीपकुमार की माय को उस तरह आंख की मटकी क्यों मार गया ? प्रदीपकुमार की माय उस तरह हंसी क्यों ? उठकर आंगन में गई क्यों ?

उजागिर का मन धुएं से भर गया मानो।

उसने पुकारा, "बबुआ ! बेटा प्रदीपकुमार ?"

प्रदीपकुमार आया। उसका मुंह भी तमतमाया हुआ है। उजागिर ने धीरे से पूछा, "बबुआ, माय कहां है ? क्या कर रही है ?"

प्रदीपकुमार बोला, "बप्पा, मिस्तरी बड़ा बदमाश है। हमको पतासू कहता है।"

उजागिर गुस्सा से दपदपा उठा। उस छुछुंदर-मुंहा की इतनी हिम्मत! मेरे बेटे को, प्रदीपकुमार को पतासू कहेगा?

वह उठकर दहलीज़ के पास गया। आंगन में घुन-घुन करके क्या प्राइविट बात हो रही है? आमने-सामने बैठकर? मिस्तरी साला इस तरह जांघ के कपड़े हटाकर क्यों बैठा है?

उजागिर के सिर पर अंगीठी जलने लगी मानो, वह आंगन में जाकर गरजा, "मिस्तरी! दीवाल की गंथाई यहीं हो रही है क्या?"

मिस्तरी अप्रतिभ होकर उठा। हंसती हुई प्रदीपकुमार की माय भी चौंक पड़ी। उजागिर ने धड़ाम से दहलीज़ का दरवाज़ा बन्द कर दिया।

प्रदीपकुमार की माय उजागिर की आंखें देखकर डर गई। उजागिर ओठ को दांतों से भींचता हुआ उसके पास गया। फिर धीरे से बोला, "तू कुत्ती है! कुत्ती! कुतिया।"

प्रदीपकुमार की माय ने आवाज़ ऊंची करके कहा, "क्या हो गया है तुमको?"

उजागिर चुपचाप अपनी कोठरी में चला गया। अन्दर से ही उसने पुकारा, "बेटा! प्रदीपकुमार! यहां आओ।"

प्रदीपकुमार अपने बाप के पास चला गया। बाहर, दूकान में चूल्हे सुलगते रहे।

गाड़ियां आईं। ड्राइवरों ने हॉर्न बजा-बजाकर पुकारा। संतोखी सिंघ ने आवाज़ दी। आंगन से कोई जवाब नहीं मिला। किसी ने कहा, "भाई अब पक्का मकान बनवा रहा है। दूकान पर क्यों बैठेगा?"

गाड़ियां आतीं, रुकतीं, हॉर्न देतीं, फिर चली जातीं।

दिन-भर उजागिर घर से नहीं निकला। प्रदीपकुमार भी दम साधकर बाप के बगल में पड़ा रहा। प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर बैठी गुन-गुन सुर में, धीरे-धीरे रोती रही।

सांझ हुई। उजागिर उठा और प्रदीपकुमार की माय के पास जाकर बोला, "उस छुछुंदर-मुंहे मिस्तरी के साथ जाती क्यों नहीं, हरामजादी! निकल जा मेरे आंगन से।"

प्रदीपकुमार की माय बोली, "इतनी तेजी है तो कल से तुम्हीं देखो जन-मजदूरों को! पक्का घर बनवाना खेल···"

"जहन्नुम में जाए साली तेरा पक्का घर!"

"और दूकान पर हज़ारों लोगों के सामने···।"

"आग लगे तेरी दूकान में।"

उजागिर बाहर गया और लात मार-मारकर दोनों चूल्हों को तोड़-फोड़ आया। दहलीज़ का दरवाज़ा बंद करते हुए बोला, "निकल जा, पिछवाड़े की राह चुपचाप। नहीं तो आज खून कर डालूंगा।"

अब प्रदीपकुमार रोने लगा। उजागिर उसको गोद में लेकर अपनी कोठरी में चला गया। प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर ही बैठी रही। प्रदीपकुमार रोते-रोते सो गया।

सांझ बीती। रात आई। सड़क पर एक ट्रैक्टर भड़भड़ाता हुआ चला गया। उजागिर ने बाहर निकलकर देखा, प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर ही लेट गई है।

उजागिर दबे पांव उसके पास गया।···"जाकर मिस्तरी की खटिया पर क्यों नहीं सोती? नखरा पसारकर यहां जमीन पर क्यों सोई है?" उजागिर ने धक्का दिया, "उठ साली! तिरिया-चरित्तर कहीं और जाकर दिखला!"

प्रदीपकुमार की माय उठकर बैठ गई और दोनों हाथों से उजागिर का पांव पकड़कर बोली, "प्रदीप के बाबू। तुम्हारे पैर पड़ती हूं! मेरा गला घोंटकर मार डालो।···मार डालो मुझे!"

उजागिर ने दोनों हाथों से उसकी गर्दन को झपटकर पकड़ा। लम्बे बाल छितरा गए, खुलकर, "हां, मार डालूंगा।"

"मार डालो। मैं जीना नहीं चाहती।"

"मार डालूंगा, गला टीपकर। हरामजादी !"

"मारो। प्रदीप के बा···! आ···आक।"

"बोल, कल से तू आंगन के बाहर पैर रखेगी ?"

"नहीं रखूंगी।"

"किसी से हंसेगी-बोलेगी नहीं। बोल !"

"नहीं।"

"मिस्तरी से ?"···"नहीं"। "दारोगा से?"···"नहीं"। "उस लाला के बेटे से ?"···"नहीं।" "लाल गाड़ी के ड्राइवर से ?"···"नहीं ! नहीं ! नहीं।···प्रदीप के बाबू उ-उ-उ !···" प्रदीप की माय उजागिर की छाती से मुंह सटाकर बिलखने लगी। उसे लगा, विवाह के बाद आज पहली बार वह अपने घरवाले के साथ—अपने पुरुष के साथ सुहागरात मना रही है।···अंग-अंग में सिहरन···लहरें···तूफान···प्रदीप के बाबू, मुझे मार···डा···लो···मार···डालो !!

सड़क से एक ट्रक हड़हड़ाती हुई गुज़र गई।
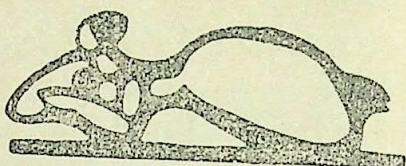
तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम

हिरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है।...

पिछले बीस साल से गाड़ी हांकता है हिरामन। बैलगाड़ी। सीमा के उस पार, मोरंग राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है। कण्ट्रोल के ज़माने में चोरबाज़ारी का माल इस पार से उस पार पहुंचाया है। लेकिन कभी तो ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में!...

कण्ट्रोल का ज़माना! हिरामन कभी भूल नहीं सकता है उस ज़माने को! एक बार चार खेप सीमेंट और कपड़े की गांठों से भरी गाड़ी, जोगबनी से विराटनगर पहुंचाने के बाद हिरामन का कलेजा पोख्ता हो गया था। फारबिसगंज का हर चोर-व्यापारी उसको पक्का गाड़ीवान मानता। उसके बैलों की बड़ाई बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी खुद करते, अपनी भाषा में।...

गाड़ी पकड़ी गई पांचवीं बार, सीमा के इस पार तराई में।

महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गांठों के बीच चुक्की-मुक्की लगाकर छिपा हुआ था। दारोगा साहब की डेढ़ हाथ लम्बी चोरबत्ती की रोशनी कितनी तेज़ होती है, हिरामन जानता है। एक घण्टे के लिए आदमी अन्धा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाए आंखों पर! रोशनी के साथ कड़कती हुई आवाज़—ऐ-य! गाड़ी रोको! साले, गोली मार देंगे!...

बीसों गाड़ी एकसाथ कचकचाकर रुक गईं। हिरामन ने पहले ही

कहा था—यह बीस विषावेगा ! दारोगा साहब उसकी गाड़ी में दुबके हुए मुनीमजी पर रोशनी डालकर पिशाची हंसी हंसे—हा-हा-हा ! मुंड़ीम जी-ई-ई ई ! ही-ही-ही !···ऐ-य, साला गाड़ीवान, मुंह क्या देखता है रे-ए-ए ! कम्बल हटाग्रो इस बोरे के मुंह पर से ! हाथ की छोटी लाठी से मुनीमजी के पेट में खोंचा मारते हुए कहा था—इस बोरे को ! स-स्साला !···

बहुत पुरानी अखज-अदावत होगी दारोगा साहब ग्रौर मुनीमजी में। नहीं तो उतना रुपया कबूलने पर भी पुलिस-दारोगा का मन न डोले भला ! चार हज़ार तो गाड़ी पर बैठा-बैठा ही दे रहा था। लाठी से दूसरी बार खोंचा मारा दारोगा ने। पांच हजार ! फिर खोंचा—उतरो पहले।···

मुनीम को गाड़ी से नीचे उतारकर दारोगा ने उसकी ग्रांखों पर रोशनी डाल दी। फिर दो सिपाहियों के साथ सड़क से बीस-पच्चीस रस्सी दूर झाड़ी के पास ले गए। गाड़ीवान ग्रौर गाड़ियों पर पांच-पांच बन्दूकवाले सिपाहियों का पहरा !···हिरामन समझ गया, इस बार निस्तार नहीं।···जेल ? हिरामन को जेल का डर नहीं। लेकिन उसके बैल ? न जाने कितने दिनों तक बिना चारा-पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेंगे—भूखे-प्यासे। फिर नीलाम हो जाएंगे। भैया ग्रौर भौजी को वह मुंह नहीं दिखा सकेगा कभी।···नीलाम की बोली उसके कानों के पास गूंज गई—एक दो-तीन !···दारोगा ग्रौर मुनीम में बात पट नहीं रही थी शायद।

हिरामन की गाड़ी के पास तैनात सिपाही ने ग्रपनी भाषा में दूसरे सिपाही से धीमी ग्रावाज़ में पूछा—का हो ? मामला गोल होखी का ? फिर खैनी-तम्ब्राकू देने के बहाने उस सिपाही के पास चला गया।···

एक-दो-तीन ! तीन-चार गाड़ियों की ग्राड़ ! हिरामन ने फैसला कर लिया। उसने धीरे से ग्रपने बैलों के गले की रस्सियां खोल लीं। गाड़ी पर बैठे-बैठे दोनों को जुड़वां बांध दिया। बैल समझ गए उन्हें

क्या करना है। हिरामन उतरा, जुती हुई गाड़ी में बांस की टिकटी लगाकर बैलों के कन्धों को बेलाग किया। दोनों के कानों के पास गुद-गुदी लगा दी और मन ही मन बोला, चलो भैयन, जान बचेगी तो ऐसी-ऐसी सग्गड़ गाड़ी बहुत मिलेगी।...एक-दो-तीन! नौ-दो-ग्यारह!...

गाड़ियों की आड़ में सड़क के किनारे दूर तक घनी झाड़ी फैली हुई थी। दम साधकर तीनों प्राणियों ने झाड़ी को पार किया—बेखटक, बे-आहट! फिर एक ले, दो ले—दुलकी चाल! दोनों बैल सीना तान-कर फिर तराई के घने जंगलों में घुस गए। राह सूंघते, नदी-नाला पार करते हुए भागे पूंछ उठाकर। पीछे-पीछे हिरामन। रात-भर भागते रहे थे तीनों जन।...

घर पहुंचकर दो दिन तक बेसुध पड़ा रहा हिरामन। होश में आते ही उसने कान पकड़कर कसम खाई थी—अब कभी ऐसी चीज़ों की लदनी नहीं लादेंगे। चोरबाज़ारी का माल? तोबा, तोबा!...पता नहीं मुनीमजी का क्या हुआ! भगवान जाने उसकी सग्गड़ गाड़ी का क्या हुआ! असली इस्पात लोहे की धुरी थी। दोनों पहिये तो नहीं, एक पहिया एकदम नया था। गाड़ी में रंगीन डोरियों के फुंदने बड़े जतन से गूंथे गए थे।...

दो कसमें खाई हैं उसने। एक, चोरबाज़ारी का माल नहीं लादेंगे। दूसरी—बांस। अपने हर भाड़ेदार से वह पहले ही पूछ लेता है—चोरी-चमारीवाली चीज़ तो नहीं? और, बांस लादने के लिए पचास रुपये भी दे कोई, हिरामन की गाड़ी नहीं मिलेगी। दूसरे की गाड़ी देखे।...

बांस लदी हुई गाड़ी! गाड़ी से चार हाथ आगे बांस का अगुआ निकला रहता है और पीछे की ओर चार हाथ पिछुआ! काबू के बाहर रहती है गाड़ी हमेशा। सो बेकाबूवाली लदनी और खरैहिया शहर-वाली बात! तिस पर बांस का अगुआ पकड़कर चलनेवाला भाड़ेदार का महाभकुआ नौकर, लड़की-स्कूल की ओर देखने लगा। बस, मोड़

पर घोड़ागाड़ी से टक्कर हो गई। जब तक हिरामन बैलों की रस्सी खींचे, तब तक घोड़ागाड़ी की छतरी बांस के अगुआ में फंस गई। घोड़ा-गाड़ीवाले ने तड़ातड़ चाबुक मारते हुए गाली दी थी !...

बांस की लदनी ही नहीं, हिरामन ने खरैहिया शहर की लदनी भी छोड़ दी। और जब फारबिसगंज से मोरंग का भाड़ा ढोना शुरू किया तो गाड़ी ही पार !...कई वर्षों तक हिरामन ने बैलों को आधीदारी पर जोता। आधा भाड़ा गाड़ीवाले का और आधा बैलवाले का। इस्स ! गाड़ीवानी करो मुफ्त ! आधीदारी की कमाई से बैलों के ही पेट नहीं भरते। पिछले साल ही उसने अपनी गाड़ी बनवाई है।

देवी मैया भला करें उस सरकस कम्पनी के बाघ का ! पिछले साल इसी मेले में बाघगाड़ी को ढोनेवाले दोनों घोड़े मर गए। चम्पा-नगर से फारबिसगंज मेला आने के समय सरकस कम्पनी के मैनेजर ने गाड़ीवान-पट्टी में ऐलान करके कहा—सौ रुपया भाड़ा मिलेगा ! एक-दो गाड़ीवान राज़ी हुए। लेकिन, उनके बैल बाघगाड़ी से दस हाथ दूर ही डर से डिरकने लगे—बां-आं ! रस्सी तुड़ाकर भागे। हिरामन ने अपने बैलों की पीठ सहलाते हुए कहा—देखो भैयन, ऐसा मौका फिर हाथ नहीं आवेगा। यही मौका है अपनी गाड़ी बनवाने का। नहीं तो फिर आधीदारी...। अरे, पिंजड़े में बन्द बाघ का क्या डर ? मोरंग की तराई में दहाड़ते हुए बाघों को देख चुके हो। फिर पीठ पर मैं तो हूं।...

गाड़ीवानों के दल में तालियां पटपटा उठी थीं एकसाथ। सभी की लाज रख ली हिरामन के बैलों ने। हुमककर आगे बढ़ गए और बाघगाड़ी में जुट गए—एक-एक करके। सिर्फ दाहिने बैल ने जुतने के बाद ढेर-सा पेशाब किया था। हिरामन ने दो दिन तक नाक से कपड़े की पट्टी नहीं खोली थी। बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी की तरह नकबन्धन लगाए बिना बघाइन गन्ध बरदाश्त नहीं कर सकता कोई।

...बाघगाड़ी की गाड़ीवानी की है हिरामन ने। कभी ऐसी गुदगुदी

नहीं लगी पीठ में। आज रह-रहकर उसकी गाड़ी में चम्पा का फूल महक उठता है। पीठ में गुदगुदी लगने पर वह अंगोछे से पीठ झाड़ लेता है।

हिरामन को लगता है, दो वर्ष से चम्पानगर मेले की भगवती मैया उसपर प्रसन्न हैं। पिछले साल बाघगाड़ी जुट गई। नगद एक सौ रुपये भाड़े के अलावा बुताद, चाह-बिस्कुट और रास्ते-भर बन्दर-भालू और जोकर का तमाशा देखा सो फोकट में !

और, इस बार यह जनानी सवारी। औरत है या चम्पा का फूल ! जब से गाड़ी में बैठी है, गाड़ी मह-मह महक रही है।

कच्ची सड़क के एक छोटे-से खड्ड में गाड़ी का दाहिना पहिया बेमौके हिचकोला खा गया। हिरामन की गाड़ी से एक हल्की 'सिस' की आवाज़ आई। हिरामन ने दाहिने बैल को दुआली से पीटते हुए कहा—साला ! क्या समझता है, बोरे की लदनी है क्या ?

—अहा ! मारो मत !

अनदेखी औरत की आवाज़ ने हिरामन को अचरज में डाल दिया। बच्चों की बोली जैसी महीन, फेनूगिलासी बोली !

मथुरामोहन नौटंकी कम्पनी में लैला बननेवाली हीराबाई का नाम किसने नहीं सुना होगा भला ! लेकिन हिरामन की बात निराली है। उसने सात साल तक लगातार मेलों की लदनी लादी है, कभी नौटंकी-थियेटर या बायस्कोप-सिनेमा नहीं देखा। लैला या हीराबाई का नाम भी उसने नहीं सुना कभी। देखने की क्या बात ! सो मेला टूटने के पन्द्रह दिन पहले आधी रात की बेला में काली ओढ़नी में लिपटी औरत को देखकर उसके मन में खटका अवश्य लगा था। बक्स ढोनेवाले नौकर ने गाड़ी-भाड़ा में मोल-मोलाई करने की कोशिश की तो ओढ़नी-वाली ने सिर हिलाकर मना कर दिया। हिरामन ने गाड़ी जोतते हुए नौकर से पूछा—क्यों भैया, कोई चोरी-चमारी का माल-वाल तो नहीं ? हिरामन को फिर अचरज हुआ। बक्सा ढोनेवाले आदमी ने हाथ के

इशारे से गाड़ी हांकने को कहा और अंधेरे में गायब हो गया। हिरा-मन को मेले में तम्बाकू बेचनेवाली बूढ़ी की काली साड़ी की याद आई थी।...

ऐसे में कोई क्या गाड़ी हांके!

एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है। दूसरे रह-रहकर चम्पा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में। बैलों को डांटो तो इस-बिस करने लगती है उसकी सवारी।...उसकी सवारी! औरत अकेली, तम्बाकू बेचनेवाली बूढ़ी तो नहीं! आवाज़ सुनने के बाद वह बार-बार मुड़कर टप्पर में एक नजर डाल देता है; अंगोछे से पीठ झाड़ता है।...भगवान जाने क्या लिखा है इस बार उसकी किस्मत में! गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चांदनी उसकी गाड़ी में समा गया। सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा। हिरामन को सब कुछ रहस्यमय—अजगुत-अजगुत—लग रहा है। सामने चम्पानगर से सिंधिया गांव तक फैला हुआ मैदान!...कहीं डाकिन-पिशाचिन तो नहीं?

हिरामन की सवारी ने करवट ली। चांदनी पूरे मुखड़े पर पड़ी तो हिरामन चीखते-चीखते रुक गया—अरे बाप! ई तॅ परी है!

परी की आंखें खुल गई। हिरामन ने सामने सड़क की ओर मुंह कर लिया और बैलों को टिटकारी दी। वह जीभ को तालू से सटाकर टि-टि-टि-टि आवाज निकालता है। हिरामन की जीभ जाने कब से सूखकर लकड़ी जैसी हो गई थी!

—भैया, तुम्हारा नाम क्या है?

हू-ब-हू फेनूगिलास!...हिरामन के रोम-रोम बज उठे। मूंह से बोली नहीं निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं।

—मेरा नाम?...नाम मेरा है हिरामन!

उसकी सवारी मुस्कराती है।...मुस्कराहट में खुशबू है।

—तब तो मीता कहूंगी, भैया नहीं।...मेरा नाम भी हीरा है।

—इस्स ! हिरामन को परतीत नहीं, मर्द और औरत के नाम में फर्क होता है।

—हां जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।

कहां हिरामन और कहां हीराबाई, बहुत फर्क है !

हिरामन ने अपने बैलों को झिड़की दी—कान चुनियाकर गप सुनने से ही तीस कोस मंज़िल कटेगी क्या ? इस बायें नाटे के पेट में शैतानी भरी है।—हिरामन ने बायें बैल को दुआली की हलकी झड़प दी।

—मारो मत; धीरे-धीरे चलने दो। जल्दी क्या है ?

हिरामन के सामने सवाल उपस्थित हुआ, वह क्या कहकर 'गप' करे हीराबाई से ? 'तोहें' कहे या 'आंहां' ? उसकी भाषा में बड़ों को 'आंहां' अर्थात् 'आप' कहकर सम्बोधित किया जाता है। कचराही बोली में दो-चार सवाल-जवाब चल सकता है; दिल-खोल गप तो गांव की बोली में ही की जा सकती है किसीसे।

आसिन-कातिक की भोर में छा जानेवाले कुहासे से हिरामन को पुरानी चिढ़ है। बहुत बार वह सड़क भूलकर भटक चुका है। किन्तु आज की भोर के इस घने कुहासे में भी वह मगन है। नदी के किनारे धन-खेतों से फूले हुए धान के पौधों की पवनिया गन्ध आती है। पर्व-पावन के दिन गांव में ऐसी ही सुगन्ध फैली रहती है। उसकी गाड़ी में फिर चम्पा का फूल खिला। उस फूल में एक परी बैठी है।···जै भगवती !

हिरामन ने आंख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी···मीता··· हीराबाई की आंखें गुजुर-गुजुर उसको हेर रही हैं। हिरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है। वह बोला —बैल को मारते हैं तो आपको बहुत बुरा लगता है ?

हीराबाई ने परख लिया, हिरामन सचमुच हीरा है !

चालीस साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा, देहाती नौजवान अपनी

गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। घर में बड़ा भाई है, खेती करता है। बाल-बच्चे-वाला आदमी है। हिरामन भाई से बढ़कर भाभी की इज़्ज़त करता है। भाभी से डरता भी है। हिरामन की भी शादी हुई थी, बचपन में ही। गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। हिरामन को अपनी दुलहिन का चेहरा याद नहीं।···दूसरी शादी? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की ज़िद्द, कुमारी लड़की से ही हिरामन की शादी करवाएगी। कुमारी का मतलब हुआ पांच-सात साल की लड़की। कौन मानता है सरधा-कानून? कोई लड़कीवाला दोव्याहू को अपनी लड़की गरज में पड़ने पर ही दे सकता है। भाभी उसकी तीन सत्त करके बैठी है, सो बैठी है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती!···अब हिरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाए? व्याह करके फिर गाड़ीवानी क्या करेगा कोई! और सब कुछ छूट जाए, गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हिरामन।

हीराबाई ने हिरामन के जैसा निश्छल आदमी बहुत कम देखा है। पूछा—आपका घर कौन जिल्ला में पड़ता है?—कानपुर नाम सुनते ही जो उसकी हंसी छूटी, तो बैल भड़क उठे। हिरामन हंसते समय सिर नीचा कर लेता है। हंसी बन्द होने पर उसने कहा—वाह रे कानपुर! तब तो नाकपुर भी होगा? और जब हीराबाई ने कहा कि नाकपुर भी है तो वह हंसते-हंसते दुहरा गया।

—वाह रे दुनिया! क्या-क्या नाम होता है! कानपुर, नाकपुर! हिरामन ने हीराबाई के कान के फूल को गौर से देखा। नाक की नक-छवि के नग देखकर सिहर उठा—लहू की बून्द!

हिरामन ने हीराबाई का नाम नहीं सुना कभी। नौटंकी कम्पनी की औरत को वह बाईजी नहीं समझता है।···कम्पनी में काम करनेवाली औरतों को वह देख चुका है। सरकस कम्पनी की मालकिन, अपनी दोनों जवान बेटियों के साथ बाघगाड़ी के पास आती थी, बाघ को चारा-पानी

देती थी, प्यार भी करती थी खूब। हिरामन के बैलों को भी डबलरोटी-बिस्कुट खिलाया था बड़ी बेटी ने।

हिरामन होशियार है। कुहासा छंटते ही अपनी चादर से टप्पर में परदा कर दिया—बस दो घण्टा! उसके बाद रास्ता चलना मुश्किल है। कातिक की सुबह की धूप आप बरदाश्त न कर सकिएगा। कजरी नदी के किनारे तेगछिया के पास गाड़ी लगा देंगे। दोपहरिया काटकर···।

सामने से आती हुई गाड़ी को दूर से ही देखकर वह सतर्क हो गया। लीक और बैलों पर ध्यान लगाकर बैठ गया। राह काटते हुए गाड़ीवान ने पूछा—मेला टूट रहा है क्या भाई?

हिरामन ने जवाब दिया, वह मेले की बात नहीं जानता। उसकी गाड़ी पर 'बिदागरी' (नैहर या ससुराल जाती हुई लड़की) है। न जाने किस गांव का नाम बता दिया हिरामन ने!

—छत्तापुर-पचीरा कहां है?

—कहीं हो, यह लेकर आप क्या करिएगा?—हिरामन अपनी चतुराई पर हंसा। परदा डाल देने पर भी पीठ में गुदगुदी लगती है।

हिरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आइने में अपने दांत देख रही है।···मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्ही चित्ती कौड़ियों की माला खरीद दी थी हिरामन ने। छोटी-छोटी नन्ही कौड़ियों की पांत!

तेगछिया के तीनों पेड़ दूर से ही दिखाई पड़ते हैं। हिरामन ने परदे को ज़रा सरकाते हुए कहा—देखिए, यही है तेगछिया। दो पेड़ जटामासी बड़ हैं और एक···उस फूल का क्या नाम है, आपके कुरते पर जैसा फूल छपा हुआ है, वैसा ही; खूब महकता है, दो कोस दूर तक गंध जाती है; उस फूल को खमीरा तम्बाकू में डालकर पीते भी हैं लोग।

—और उस अमराई की आड़ से कई मकान दिखाई पड़ते हैं, वहां गांव है या मन्दिर?

हिरामन ने बीड़ी सुलगाने के पहले पूछा—बीड़ी पीएं? आपको

गन्ध तो नहीं लगेगी ?···वही है नामलगर ड्योढ़ी । जिस राजा के मेले से हम लोग आ रहे हैं, उसीका दिमाद-गोतिया है ।···जा रे जमाना !

हिरामन ने 'जा रे जमाना' कहकर बात को चाशनी में डाल दिया। हीराबाई ने टप्पर के परदे को तिरछे खोंस दिया !···हीराबाई की दन्त-पंक्ति !

—कौन जमाना ?—ठुड्डी पर हाथ रखकर साग्रह बोली ।

—नामलगर ड्योढ़ी का जमाना ! क्या था, और क्या से क्या हो गया !

हिरामन गप रसाने का भेद जानता है । हीराबाई बोली—तुमने देखा था वह जमाना ?

—देखा नहीं, सुना है ।···राज कैसे गया, बड़ी हैफवाली कहानी है । सुनते हैं, घर में देवता ने जन्म ले लिया । कहिए भला, देवता आखिर देवता है । है या नहीं ? इन्द्रासन छोड़कर मिरतूभुवन में जन्म ले ले तो उसका तेज कैसे सम्हाल सकता है कोई ! सूरजमुखी फूल की तरह माथे के पास तेज खिला रहता । लेकिन नज़र का फेर, किसी ने नहीं पहचाना। एक बार उपलैन में लाट साहब मय लाटनी के हवागाड़ी से आए थे । लाट ने भी नहीं, पहचाना आखिर लाटनी ने । सूरजमुखी तेज देखते ही बोल उठी—ए मैन राजा साहब, सुनो, यह आदमी का बच्चा नहीं है, देवता है ।

हिरामन ने लाटनी की बोली की नकल उतारते समय खूब डैम-फैट-लैट किया । हीराबाई दिल खोलकर हंसी ।···हंसते समय उसकी सारी देह दुलकती है !

हीराबाई ने अपनी ओढ़नी ठीक कर ली । तब हिरामन को लगा कि···लगा कि···

—तब ? उसके बाद क्या हुआ मीता ?

—इस्स ! कथा सुनने का बड़ा शौक है आपको ?···लेकिन, काला आदमी राजा क्या महाराजा भी हो जाए, रहेगा काला आदमी

ही। साहेब के जैसा अकिल कहां से पावेगा ! हंसकर बात उड़ा दी सभी ने। तब रानी को बार-बार सपना देने लगा देवता ! सेवा नहीं कर सकते तो जाने दो, नहीं रहेंगे तुम्हारे यहां। इसके बाद देवता का खेल शुरू हुआ। सबसे पहले दोनों दंतार हाथी मरे, फिर घोड़ा, फिर पटपटांग···।

—पटपटांग क्या ?

हिरामन का मन पल-पल में बदल रहा है। मन में सतरंगा छाता धीरे-धीरे खिल रहा है, उसको लगता है।···उसकी गाड़ी पर देवकुल की औरत सवार है। देवता आखिर देवता है !

पटपटांग ! धन-दौलत, माल-मवेशी सब साफ ! देवता इन्द्रासन चला गया।—हीराबाई ने ओझल होते हुए मन्दिर के कंगूरे की ओर देखकर लम्बी सांस ली।

—लेकिन देवता ने जाते-जाते कहा, इस राज में कभी एक छोड़कर दो बेटा नहीं होगा। धन हम अपने साथ ले जा रहे हैं, गुन छोड़ जाते हैं। देवता के साथ सभी देव-देवी चले गए, सिर्फ सरोसती मैया रह गई। उसीका मन्दिर है।

देसी घोड़े पर पाट के बोझ लादे हुए बनियों को आते देखकर हिरामन ने टप्पर के परदे को गिरा दिया। बैलों को ललकारकर विदेशिया नाच का बंदना-गीत गाने लगा—जै मैया सरोसती, अरजी करत बानी; हमरा पर होखू सहाई हे मैया, हमरा पर होखू सहाई !

घोड़लद्दे बनियों से हिरामन ने हुलसकर पूछा—क्या भाव पटुआ खरीदते हैं महाजन ?

लंगड़े घोड़ेवाले बनिये ने बटगमनी जवाब दिया—नीचे सत्ताइस-अठाइस, ऊपर तीस। जैसा माल वैसा भाव !

जवान बनिये ने पूछा—मेला का क्या हाल-चाल है, भाई ? कौन नौटंकी कम्पनी का खेल हो रहा है, रौता कम्पनी या मथुरामोहन ?

—मेले का हाल मेलावाला जाने !—हिरामन ने फिर छत्तापुर-

पचीरा का नाम लिया।

सूरज दो बांस ऊपर आ गया था। हिरामन अपने बैलों से बात करने लगा—एक कोस ज़मीन! ज़रा दम बांधकर चलो। प्यास की वेला हो गई न! याद है, उस बार तेगछिया के पास यरकस कम्पनी के जोकड़ और बन्दर नचानेवाले साहब में झगड़ा हो गया था। जोकड़वा ठीक बन्दर की तरह दांत किटकिटाकर किकियाने लगा था।··· न जाने किस-किस देश-मुलुक के आदमी आते हैं!

हिरामन ने फिर परदे के छेद से देखा, हीराबाई एक कागज़ के टुकड़े पर आंख गड़ाकर बैठी है। हीरामन का मन आज हलके सुर में बंधा है। उसको तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पच्चीस साल पहले, बिदेशिया, बलवाही, छोकरा नाच वाले एक से एक ग़ज़ल, खेमटा गाते थे। अब तो, भोंपा में भोंपू-भोंपू करके कौन गीत गाते हैं लोग! जा रे जमाना! छोकरा-नाच के गीत की याद आई हिरामन को—

सजनवा वैरी हो ग'य हमारो! सजनवा···!
अरे, चिठिया हो तो सब कोई बांचे; चिठिया हो तो···
हाय! करमवा, होय, करमवा···
कोई'ना बांचे हमारो, सजनवा···हो करमवा···।

गाड़ी की बल्ली पर उंगलियों से ताल देकर गीत को काट दिया हिरामन ने। छोकरा-नाच के मनुआं नटुवा का मुंह हीराबाई जैसा ही था।···कहां चला गया वह ज़माना! हर महीने गांव में नाचवाले आते थे। हिरामन ने छोकरा नाच के चलते अपनी भाभी की न जाने कितनी बोली-ठोली सुनी थी। भाई ने घर से निकल जाने को कहा था।

आज हिरामन पर मां सरस्वती सहाय हैं, लगता है। हीराबाई बोली—वाह, कितना बढ़िया गाते हो तुम!

हिरामन का मुंह लाल हो गया। वह सिर नीचा करके हंसने लगा।

आज तेगछिया पर रहनेवाले महावीर स्वामी भी सहाय हैं हिरामन

पर। तेगछिया के नीचे एक भी गाड़ी नहीं। हमेशा गाड़ी और गाड़ीवानों की भीड़ लगी रहती है यहां। सिर्फ एक सायकिलवाला बैठकर सुस्ता रहा है। महावीर स्वामी को सुमरकर हिरामन ने गाड़ी रोकी। हीराबाई परदा हटाने लगी। हीरामन ने पहली बार आंखों से बात की हीराबाई से—सायकिलवाला इधर ही टकटकी लगाकर देख रहा है।

बैलों को खोलने के पहले बांस की टिकटी लगाकर गाड़ी को टिका दिया। फिर सायकिलवाले की ओर बार-बार घूरते हुए पूछा—कहां जाना है? मेला? कहां से आना हो रहा है? बिसनपुर से? बस, इतने ही दूर में थसथसाकर थक गए?···जा रे जवानी!

सायकिलवाला दुबला-पतला नौजवान मिनमिनाकर कुछ बोला और बीड़ी सुलगाकर उठ खड़ा हुआ।

हिरामन दुनिया-भर की निगाह से बचाकर रखना चाहता है हीराबाई को। उसने चारों ओर नज़र दौड़ाकर देख लिया—कहीं कोई गाड़ी या घोड़ा नहीं।

कजरी नदी की दुबली-पतली धारा तेगछिया के पास आकर पूरब की ओर मुड़ गई है। हीराबाई पानी में बैठी हुई भैंसों और उनकी पीठ पर बैठे हुए बगुलों को देखती रही।

हिरामन बोली—जाइए, घाट पर मुंह-हाथ धो आइए।

हीराबाई गाड़ी से नीचे उतरी। हिरामन का कलेजा धड़क उठा।···नहीं, नहीं! पांव सीधे हैं, टेढ़े नहीं। लेकिन तलुवा इतना लाल क्यों है? हीराबाई घाट की ओर चली गई, गांव की बहु-बेटी की तरह सिर नीचा करके धीरे-धीरे। कौन कहेगा कि कम्पनी की औरत है!···औरत नहीं, लड़की। शायद कुमारी ही है।

हिरामन टिकटी पर टिकी गाड़ी पर बैठ गया। उसने टप्पर में झांककर देखा। एक बार इधर-उधर देखकर हीराबाई के तकिये पर हाथ रख दिया। फिर तकिये पर केहुनी डालकर झुक गया, झुकता गया! खुशबू उसकी देह में समा गई। तकिये के गिलाफ पर कढ़े फूलों

को उंगलियों से छूकर उसने सूंघा, हाय रे हाय! इतनी सुगंध! हिरामन को लगा, एक साथ पांच चिलम गांजा फूंककर वह उठा है। हीराबाई के छोटे आईने में उसने अपना मुंह देखा। आंखें उसकी इतनी लाल क्यों हैं?

हीराबाई लौटकर आई तो उसने हंसकर कहा—अब आप गाड़ी का पहरा कीजिए, मैं आता हूं तुरत।

हिरामन ने अपनी सफरी झोली से सहेजी हुई गंजी निकाली। गमछा झाड़कर कंधे पर लिया और हाथ में बालटी लटकाकर चला। उसके बैलों ने बारी-बारी से 'हुंक-हुंक' करके कुछ कहा। हिरामन ने जाते-जाते उलटकर कहा—हां, हां, प्यास सभीको लगी है। लौटकर आता हूं तो घास दूंगा, बदमाशी मत करो!

बैलों ने कान हिलाए।

नहा-धोकर कब लौटा हिरामन, हीराबाई को नहीं मालूम। कजरी की धारा को देखते-देखते उसकी आंखों में रात की उचटी हुई नींद लौट आई थी। हिरामन पास के गांव से जलपान के लिए दही-चूड़ा-चीनी ले आया है।

—उठिए, नींद तोड़िए! दो मुट्ठी जलपान कर लीजिए!

हीराबाई आंख खोलकर अचरज में पड़ गई। एक हाथ में मिट्टी के नये बरतन में दही, केले के पत्ते। दूसरे हाथ में बाल्टी-भर पानी। आंखों में आत्मीयतापूर्ण अनुरोध!

—इतनी चीज़ें कहां से ले आए?

—इस गांव का दही नामी है।...चाह तो फारबिसगंज जाकर ही पाइएगा।

हिरामन की देह की गुदगुदी बिला गई। हीराबाई ने कहा—तुम भी पत्तल बिछाओ।...क्यों? तुम नहीं खाओगे तो समेटकर रख लो अपनी झोली में। मैं भी नहीं खाऊंगी!

—इस्स!—हिरामन लजाकर बोला—अच्छी बात! आप खा लीजिए पहले।

—पहले-पीछे क्या ? तुम भी बैठो।

हिरामन का जी जुड़ा गया। हीराबाई ने अपने हाथ से उसका पत्तल बिछा दिया, पानी छींट दिया, चूड़ा निकालकर दिया। इस्स ! धन्न है, धन्न है ! हिरामन ने देखा, भगवती मैया भोग लगा रही है। लाल ओठों पर गोरस का परस !···पहाड़ी तोते को दूध-भात खाते देखा है ?

दिन ढल गया।

टप्पर में सोई हीराबाई और ज़मीन पर दरी बिछाकर सोये हिरामन की नींद एक ही साथ खुली।···मेले की ओर जानेवाली गाड़ियां तेगछिया के पास रुकी हैं। बच्चे कचर-पचर कर रहे हैं।

हिरामन हड़बड़ाकर उठा। टप्पर के अन्दर झांककर इशारे से कहा—दिन ढल गया ! गाड़ी में बैलों को जोतते समय उसने गाड़ीवानों के सवालों का कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी हांकते हुए बोला—सिरपुर बाजार के इसपिताल की डागडरनी हैं। रोगी देखने जा रही हैं। पास ही कुड़मागाम।

हीराबाई छत्तापुर-पचीरा का नाम भूल गई। गाड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़ आई तो उसने हंसकर पूछा—पत्तापुर-छपीरा ?

हंसते-हंसते पेट में बल पड़ गए हिरामन के—पत्तापुर-छपीरा ! हा-हा ! वे लोग छत्तापुर-पचीरा के ही गाड़ीवान थे, उनसे कैसे कहता ! ही-ही !

हीराबाई मुस्कराती हुई गांव की ओर देखने लगी।

सड़क तेगछिया गांव के बीच से निकलती है। गांव के बच्चों ने परदेवाली गाड़ी देखी और तालियां बजा-बजाकर रटी हुई पंक्तियां दुहराने लगे—

> लाली-लाली डोलिया में
> लाली रे दुलहिनिया
> पान खाए···!

हिरामग हंसा।···दुलहिनिया···लाली-लाली डोलिया ! दुलहिनिया पान खाती है, दुलहा की पगड़ी में मुंह पोंछती है। ओ दुलहिनिया, तेग-छिया गांव के बच्चों को याद रखना। लौटती बेर गुड़ का लड्डू लेती अइयो ! लाख बरिस तेरा दुलहा जीए !···कितने दिनों का हौसला पूरा हुआ है हिरामन का। ऐसे कितने सपने देखे हैं उसने !···वह अपनी दुल-हिन को लेकर लौट रहा है। हर गांव के बच्चे तालियां बजाकर गा रहे हैं। हर आंगन से झांककर देख रही हैं औरतें। मर्द लोग पूछते हैं, कहां की गाड़ी है, कहां जाएगी। उसकी दुलहिन डोली का परदा थोड़ा सरका-कर देखती है। और भी कितने सपने···

गांव से बाहर निकलकर उसने कनखियों से टप्पर के अन्दर देखा, हीराबाई कुछ सोच रही है। हिरामन भी किसी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर के बाद वह गुनगुनाने लगा,

सजन रे झूठ मति बोलो, खुदा के पास जाना है।
नहीं हाथी, नहीं घोड़ा, नहीं गाड़ी—
वहां पैदल ही जाना है। सजन रे···।

हीराबाई ने पूछा—क्यों मीता ? तुम्हारी अपनी बोली में कोई गीत नहीं क्या ?

हिरामन अब बेखटक हीराबाई की आंखों में आंखें डालकर बात करता है। कम्पनी की औरत भी ऐसी होती है? सरकस कम्पनी की मालकिन मेम थी। लेकिन हीराबाई ! गांव की बोली में गीत सुनना चाहती है ! वह खुलकर मुस्कराया—गांव की बोली आप समझिएगा ?

—हूं-ऊं-ऊं ! हीराबाई ने गर्दन हिलाई। कान के झुमके हिल गए।

हिरामन कुछ देर तक बैलों को हांकता रहा चुपचाप। फिर बोला—गीत ज़रूर ही सुनिएगा ? नहीं मानिएगा ?···इस्स ! इतना सौख गांव का गीत सुनने का है आपको ! तब लीक छोड़नी होगी। चालू रास्ते में कैसे गीत गा सकता है कोई ! हिरामन ने बायें बैल की रस्सी खींचकर दाहिनी को लीक से बाहर किया और बोला–हरिपुर होकर नहीं जाएंगे तब।

चालू लीक को काटते देखकर हिरामन की गाड़ी के पीछे वाले गाड़ीवान ने चिल्लाकर पूछा—काहे हो गाड़ीवान, लीक छोड़कर बेलीक कहां उधर ?

हिरामन ने हवा में दुग्राली घुमाते हुए जवाब दिया—कहां है बेलीक ? वह सड़क ननपुर तो नहीं जाएगी ! फिर अपने-आप बड़बड़ाया—इस मुलुक के लोगों की यही आदत बहुत बुरी है। राह चलते एक सौ जिरह करेंगे। अरे भाई, तुमको जाना है, जाओ।···देहाती भुच्च सब !

ननपुर की सड़क पर गाड़ी लाकर हिरामन ने बैलों की रस्सी ढीली कर दी। बैलों ने दुलकी चाल छोड़कर कदमचाल पकड़ी।

हीराबाई ने देखा, सचमुच ननपुर की सड़क बड़ी सूनी है। हिरामन उसकी आंखों की बोली समझता है—घबड़ाने की बात नहीं। यह सड़क भी फारबिसगंज जाएगी, राह-घाट के लोग बहुत अच्छे हैं।···एक घड़ी रात तक हम लोग पहुंच जाएंगे।

हीराबाई को फारबिसगंज पहुंचने की जल्दी नहीं। हिरामन पर उसको इतना भरोसा हो गया है कि डर-भय की कोई बात ही नहीं उठती है मन में। हिरामन ने पहले जी-भर मुस्करा लिया। कौन गीत गाए वह ? हीराबाई को गीत और कथा दोनों का शौक है···इस्स ! महुआ घटवारिन ? वह बोला—अच्छा, जब आपको इतना शौख है तो सुनिए महुआ घटवारिन का गीत। इसमें गीत भी है, कस्था भी है।

···कितने दिनों के बाद भगवती ने यह हौसला भी पूरा कर दिया। जै भगवती ! आज हिरामन अपने मन को खलास कर लेगा। वह हीराबाई की थमी हुई मुस्कराहट को देखता रहा।

—सुनिए ! आज भी परमान नदी में महुआ घटवारिन के कई पुराने घाट हैं। इसी मुलुक की थी महुआ ! थी तो घटवारिन, लेकिन सौ सतवंती में एक थी। उसका बाप दारू-ताड़ी पीकर दिन-रात बेहोश पड़ा रहता। उसकी सौतेली मां साच्छात राकसनी ! बहुत नजर-चालाक। रात में गांजा-दारू-अफीम चुराकर बेचनेवालों से लेकर तरह-तरह के

लोगों से उसकी जान-पहचान थी। सबसे घुट्टी-भर हेल-मेल। महुआ कुमारी थी। लेकिन काम कराते-कराते उसकी हड्डी निकाल दी थी राकसनी ने। जवान हो गई, कहीं शादी-ब्याह की बात भी नहीं चलाई। एक रात की बात सुनिए!

हिरामन ने धीरे-धीरे गुनगुनाकर गला साफ किया—

हे-अ-अ-अ सावना-भादवा के-र-उमड़ल नदिया-गे-मै-यो-ओ-ओ,
मैयो गे रैनि भयावनि-हे-ए-ए-ए;
तड़का तड़के धड़के करेजा-आ-आ मोरा
कि हमहुं जे बारी-नान्ही रे-ए-ए······!

ओ मां! सावन-भादों की उमड़ी हुई नदी, भयावनी रात, बिजली कड़कती है, मैं बारी-क्वारी नन्ही बच्ची, मेरा कलेजा धड़कता है। अकेली कैसे जाऊं घाट पर? सो भी एक परदेशी राही-बटोही के पैर में तेल लगाने के लिए। सत-मां ने अपनी बज्जर-किवाड़ी बंद कर ली। आसमान में मेघ हड़हड़ा उठे और हरहराकर बरसा होने लगी। महुआ रोने लगी अपनी मरी मां को याद करके। आज उसकी मां रहती तो ऐसे दुरदिन में कलेजे से सटाकर रखती अपनी महुआ बेटी को। गे मइया, इसी दिन के लिए, यही दिखाने के लिए तुमने कोख में रखा था? महुआ अपनी मां पर गुस्साई—क्यों वह अकेली मर गई, जी-भर कोसती हुई बोली।

हिरामन ने लक्ष्य किया, हीराबाई तकिये पर कुहनी गड़ाकर, गीत में मगन एकटक उसकी ओर देख रही है।···खोई हुई सूरत कैसी भोली लगती है!

हिरामन ने गले में कंपकंपी पैदा की—

हूं-ऊं-ऊं-रे डाइनिया मैया मोरी-ई-ई, नोनवा चटाई काहे नाहिं मारलि सौरी घर-अ-अ। एहि दिनवां खातिर छिनरो धिया तंहु पोसलि कि नेनू-दूव-उटगन···।

हिरामन ने दम लेते हुए पूछा—भाखा भी समझती हैं कुछ या खाली

गीत ही सुनती हैं ?

हीरा बोली—सब समझती हूं। उटगन माने उबटन···जो देह में लगाते हैं।

हिरामन ने विस्मित होकर कहा—इस्स !—सो रोने-धोने से क्या होय ! सौदागर ने पूरा दाम चुका दिया था महुआ का। बाल पकड़कर घसीटता हुआ नाव पर चढ़ा और मांझी को हुकुम दिया, नाव खोलो, पाल बांधो ! पालवाली नाव परवाली चिड़िया की तरह उड़ चली। रात-भर महुआ रोती-छटपटाती रही। सौदागर के नौकरों ने बहुत डराया-धमकाया—चुप रहो, नहीं तो उठाकर पानी में फेंक देंगे। बस, महुआ को बात सूझ गई। भोर का तारा मेघ की आड़ से ज़रा बाहर आया, फिर छिप गया। इधर महुआ भी छपाक् कूद पड़ी पानी में।··· सौदागर का एक नौकर महुआ को देखते ही मोहित हो गया था। महुआ की पीठ पर वह भी कूदा। उलटी धारा में तैरना खेल नहीं, सो भी भरी भादों की नदी में। महुआ असल घटवारिन की बेटी थी। मछली भी भला थकती है पानी में ! सफरी मछली जैसी फरफराती, पानी चीरती भागी चली जा रही है। और उसके पीछे सौदागर का नौकर पुकार-पुकारकर कहता है—महुआ ज़रा थमो, तुमको पकड़ने नहीं आ रहा, तुम्हारा साथी हूं। ज़िन्दगी-भर साथ रहेंगे हम लोग। लेकिन···।

हिरामन का बहुत प्रिय गीत है यह। महुआ घटवारिन गाते समय उसके सामने सावन-भादों की नदी उमड़ने लगती है; अमावस्या की रात और घने बादलों में रह-रहकर बिजली चमक उठती है। उसी चमक में लहरों से लड़ती हुई बारी-कुमारी महुआ की झलक उसे मिल जाती है। सफरी मछली की चाल और तेज़ हो जाती है। उसको लगता है, वह खुद सौदागर का नौकर है। महुआ कोई बात नहीं सुनती। परतीत करती नहीं। उलटकर देखती भी नहीं। और वह थक गया है तैरते-तैरते।···

इस बार लगता है महुआ ने अपने को पकड़ा दिया। खुद ही पकड़ में आ गई है। उसने महुआ को छू लिया है, पा लिया है। उसकी थकन दूर हो गई है। पन्द्रह-बीस साल तक उमड़ी हुई नदी की उलटी धारा में तैरते हुए उसके मन को किनारा मिल गया है। आनन्द के आंसू कोई रोक नहीं मानते।···

उसने हीराबाई से अपनी गीली आंखें चुराने की कोशिश की। किन्तु हीरा तो उसके मन में बैठी न जाने कब से सब कुछ देख रही थी। हिरामन ने अपनी कांपती हुई बोली को काबू में लाकर बैलों को झिड़की दी—इस गीत में न जाने क्या है कि सुनते ही दोनों थसथसा जाते हैं। लगता है सौ मन बोझ लाद दिया किसीने।

हीराबाई लम्बी सांस लेती है। हिरामन के अंग-अंग में उमंग समा जाती है।

—तुम तो उस्ताद हो मीता !

—इस्स !

आसिन-कातिक का सूरज दो बांस दिन रहते ही कुम्हला जाता है। सूरज डूबने से पहले ही ननपुर पहुंचना है, हिरामन अपने बैलों को समझा रहा है—कदम खोलकर और कलेजा बांधकर चलो।···ए···छि: छि: ! बढ़ के भैयन् ! ले-ले-ले-ए-हे-य !

ननपुर तक वह अपने बैलों को ललकारता रहा। हर ललकार के पहले वह अपने बैलों को बीती हुई बातों की याद दिलाता—याद नहीं चौधरी की बेटी की बारात में कितनी गाड़ियां थीं; सबको कैसे मात किया था ! हां, वही कदम निकालो। ले-ले-ले ! ननपुर से फारबिसगंज तीन कोस ! दो घंटे और !

ननपुर के हाट पर आजकल चाय भी बिकने लगी है। हिरामन अपने लोटे में चाय भरकर ले आया।···कम्पनी की औरत को जानता है वह। सारा दिन, घड़ी-घड़ी भर में, चाय पीती रहती है। चाय है या जान !

हीरा हंसते-हंसते लोट-पोट हो रही है—अरे, तुमसे किसने कह दिया कि क्वारे आदमी को चाय नहीं पीनी चाहिए !

हिरामन लजा गया। क्या बोले वह !···लाज की बात। लेकिन वह भोग चुका है एक बार। सरकस कम्पनी की मेम के हाथ की चाय पीकर उसने देख लिया है। बड़ी गरम तासीर !

—पीजिए गुरूजी !—हीरा हंसी।

—इस्स !

ननपुर हाट पर ही दिया-बाती जल चुकी थी। हिरामन ने अपना सफरी लालटेन जलाकर पिछवा में लटका दिया।···आजकल शहर से पांच कोस दूर गांववाले भी अपने को शहरू समझने लगे हैं। बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़कर चालान कर देते हैं। बारह बखेड़ा !

—आप मुझे गुरूजी मत कहिए।

—तुम मेरे उस्ताद हो। हमारे शास्तर में लिखा हुआ है, एक अच्छर सिखानेवाला भी गुरू और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद !

—इस्स ! शास्तर-पुरान भी जानती हैं !···मैंने क्या सिखाया ? मैं क्या···?

हीरा हंसकर गुनगुनाने लगी—हे-अ-अ-अ-सावना-भादवा के-र··· ! हिरामन अचरज के मारे गूंगा हो गया।···इस्स ! इतना तेज जेहन ! हू ब हू महुआ घटवारिन !

गाड़ी सीताधार की एक सूखी धारा की उतराई पर गड़गड़ाकर नीचे की ओर उतरी। हीराबाई ने हिरामन का कंधा धर लिया एक हाथ से। बहुत देर तक हिरामन के कंधे पर उसकी उंगलियां पड़ी रहीं। हिरामन ने नजर फिराकर कंधे पर केन्द्रित करने की कोशिश की कई बार। गाड़ी चढ़ाई पर पहुंची तो हीरा की ढीली उंगलियां फिर तन गईं।

सामने फारबिसगंज शहर की रोशनी झिलमिला रही है। शहर से

कुछ दूर हटकर मेले की रोशनी।···टप्पर में लटके लालटेन की रोशनी में छाया नाचती है आसपास।···डबडबाई आंखों से, हर रोशनी सूरज-मुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है।

फारबिसगंज तो हिरामन का घर-दुआर है!

न जाने कितनी बार वह फारबिसगंज आया है! मेले की लदनी लादी है। किसी औरत के साथ? हां, एक बार। उसकी भाभी जिस साल आई थी गौने में। इसी तरह तिरपाल से गाड़ी को चारों ओर से घेरकर बासा बनाया गया था।···

हिरामन अपनी गाड़ी को तिरपाल से घेर रहा है, गाड़ीवान-पट्टी में। सुबह होते ही रौता नौटंकी कम्पनी के मैनेजर से बात करके भरती हो जाएगी हीराबाई। परसों मेला खुल रहा है। इस बार मेले में पाल-चट्टी खूब जमी है।···बस, एक रात। आज रात-भर हिरामन की गाड़ी में रहेगी वह।···हिरामन की गाड़ी में नहीं घर में।

—कहां की गाड़ी है?···कौन, हिरामन? किस मेले से? किस चीज़ की लदनी है?

गांव-समाज के गाड़ीवान, एक-दूसरे को खोजकर, आसपास गाड़ी लगाकर बासा डालते हैं। अपने गांव के लालमोहर, धुन्नीराम और पलटदास वगैरह गाड़ीवानों के दल को देखकर हिरामन अकचका गया। उधर पलटदास टप्पर में झांककर भड़का। मानो बाघ पर नज़र पड़ गई। हिरामन ने इशारे से सभीको चुप किया। फिर गाड़ी की ओर कनखी मारकर फुसफुसाया—चुप! कम्पनी की औरत है, नौटंकी कम्पनी की।

—कम्पनी की-ई-ई-ई?

—??···??···× ×···!

एक नहीं, अब चार हिरामन! चारों ने अचरज से एक-दूसरे को देखा।···कम्पनी नाम में कितना असर है! हिरामन ने लक्ष्य किया,

तीनों एकसाथ सटक-दम हो गए। लालमोहर ने ज़रा दूर हटकर बतियाने की इच्छा प्रकट की, इशारे से ही। हिरामन ने टप्पर की ओर मुंह करके कहा—होटिल तो नहीं खुला होगा कोई, हलवाई के यहां से पक्की ले आवें !

—हिरामन, ज़रा इधर सुनो।···मैं कुछ नहीं खाऊंगी अभी। लो, तुम खा आओ।

—क्या है, पैसा ? इस्स !···पैसा देकर हिरामन ने कभी फारबिसगंज में कच्ची-पक्की नहीं खाई। उसके गांव के इतने गाड़ीवान हैं, किस दिन के लिए ? वह छू नहीं सकता पैसा। उसने हीराबाई से कहा—बेकार, मेला-बाजार में हुज्जत मत कीजिए। पैसा रखिए। मौका पाकर लालमोहर भी टप्पर के करीब आ गया। उसने सलाम करते हुए कहा—चार आदमी के भात में दो आदमी खुशी से खा सकते हैं। बासा पर भात चढ़ा हुआ है। हें-हें-हें ! हम लोग एकहि गांव के हैं। गौवां-गरामित के रहते होटिल और हलवाई के यहां खाएगा हिरामन ?

हिरामन ने लालमोहर का हाथ टीप दिया।···बेसी भचर-भचर मत बको।

गाड़ी से चार रस्सी दूर जाते-जाते धुन्नीराम ने अपने कुलबुलाते हुए दिल की बात खोल दी—इस्स ! तुम भी खूब हो हिरामन ! उस साल कम्पनी का बाघ, इस बार कम्पनी की जनाना !

हिरामन ने दबी आवाज़ में कहा—भाई रे, यह हम लोगों के मुलुक की जनाना नहीं कि लटपट बोली सुनकर भी चुप रह जाए। एक तो पच्छिम की औरत, तिस पर कम्पनी की।

धुन्नीराम ने अपनी शंका प्रकट की—लेकिन कम्पनी में तो सुनते हैं पतुरिया रहती है।

—धत्त ! सभीने एकसाथ उसको दुरदुरा दिया। कैसा आदमी है ! पतुरिया रहेगी ! कम्पनी में भला ! देखो इसकी बुद्धि !···सुना है, देखा तो नहीं है कभी !

धुन्नीराम ने अपनी गलती मान ली। पलटदास को बात सूझी—हिरामन भाई, जनाना जात अकेली रहेगी गाड़ी पर? कुछ भी हो, जनाना आखिर जनाना ही है। कोई ज़रूरत ही पड़ जाए!

यह बात सभीको अच्छी लगी। हिरामन ने कहा—बात ठीक है। पलट, तुम लौट जाओ, गाड़ी के पास ही रहना। और देखो, गपशप ज़रा होशियारी से करना। हां!

···हिरामन की देह से अतर-गुलाब की खुशबू निकलती है। हिरामन करमसांड है। उस बार महीनों तक उसकी देह से बघाइन गन्ध नहीं गई। लालमोहर ने हिरामन की गमछी सूंघ ली—ए-ह!

हिरामन चलते-चलते रुक गया—क्या करें लालमोहर भाई, ज़रा कहो तो! बड़ा ज़िद्द करती है, कहती है नौटंगी देखना ही होगा।

—फोकट में ही?

—और गांव नहीं पहुंचेगी यह बात?

हिरामन बोला—नहीं जी! एक रात नौटंगी देखकर ज़िन्दगी-भर बोली-ठोली कौन सुने?···देसी मुर्गी, विलायती चाल!

धुन्नीराम ने पूछा—फोकट में देखने पर भी तुम्हारी भौजाई बात सुनाएगी?

लालमोहर के बासा के बगल में, लकड़ी की दूकान लादकर आए हुए गाड़ीवानों का बासा है। बासा के मीर गाड़ीवान मियांजान बूढ़े ने सफरी गुड़गुड़ी पीते हुए पूछा—क्यों भाई, मीनाबाज़ार की लदनी लादकर कौन आया है!

मीनाबाज़ार! मीनाबाज़ार तो पतुरिया-पट्टी को कहते हैं।···क्या बोलता है यह बूढ़ा मियां? लालमोहर ने हिरामन के कान में फुसफुसाकर कहा—तुम्हारी देह महमह महकती है। सच!

लहसनवां लालमोहर का नौकर-गाड़ीवान है। उम्र में सबसे छोटा है। पहली बार आया है तो क्या? बाबू-बबुआनों के यहां बचपन से

नौकरी कर चुका है। वह रह-रहकर वातावरण में कुछ सूंघता है, नाक सिकोड़कर। हिरामन ने देखा, लहसनवां का चेहरा तमतमा गया है। …कौन आ रहा है धड़धड़ाता हुआ?—कौन, पलटदास? क्या है?

पलटदास आकर खड़ा हो गया चुपचाप। उसका मुंह भी तमतमाया हुआ था। हिरामन ने पूछा—क्या हुआ? बोलते क्यों नहीं?

क्या जवाब दे पलटदास! हिरामन ने उसको चेतावनी दे दी थी, गपसप होशियारी से करना। वह चुपचाप गाड़ी की आसनी पर जाकर बैठ गया, हिरामन की जगह पर। हीराबाई ने पूछा—तुम भी हिरामन के साथी हो? पलटदास ने गरदन हिलाकर हामी भरी। हीराबाई फिर लेट गई।…चेहरा-मोहरा और बोली-बानी देख-सुनकर पलटदास का कलेजा कांपने लगा; न जाने क्यों। हां! रामलीला में सिया सुकुमारी इसी तरह थकी लेटी हुई थी। जै! सियावर रामचन्द्र की जै!… पलटदास के मन में जै-जैंकार होने लगा। वह दास-वैस्नव है, कीर्तनिया है। थकी सीता महारानी के चरण टीपने की इच्छा प्रकट की उसने, हाथ की उंगलियों के इशारे से; मानो हारमोनियम की पटरियों पर नचा रहा हो। हीराबाई तमककर बैठ गई—अरे, पागल है क्या? जाओ, भागो!…

पलटदास को लगा गुस्साई हुई कम्पनी की औरत की आंखों से चिनगारी निकल रही है—छटक्-छटक्! वह भागा।…

पलटदास क्या जवाब दे! वह मेला से भी भागने का उपाय सोच रहा है। बोला—कुछ नहीं। हमको व्यापारी मिल गया। अभी ही टीशन जाकर माल लादना है। भात में तो अभी देरी है। मैं लौट आता हूं तब तक।

खाते समय धुन्नीराम और लहसनवां ने पलटदास की टोकरी-भर निन्दा की।…छोटा आदमी है। कमीना है। पैसे-पैसे का हिसाब जोड़ता है। खाने-पीने के बाद लालमोहर के दल ने अपना बासा तोड़ दिया। धुन्नी और लहनवां गाड़ी जोतकर हिरामन के बासा पर चले, गाड़ी

की लीक धरकर। हिरामन ने चलते-चलते रुककर, लालमोहर से कहा—ज़रा मेरे इस कन्धे को सूंघो तो। सूंघकर देखो न!

लालमोहर ने कन्धा सूंघकर ग्रांखें मूंद लीं। मुंह से ग्रस्फुट शब्द निकला—ए-ह!

हिरामन ने कहा—ज़रा-सा हाथ रखने पर इतनी खुशबू!···समझे!

लालमोहर ने हिरामन का हाथ पकड़ लिया—कन्धे पर हाथ रखा था? सच?···सुनो हिरामन, नौटंगी देखने का ऐसा मौका फिर कभी हाथ नहीं लगेगा। हां!

—तुम भी देखोगे?

लालमोहर की बत्तीसी चौराहे की रोशनी में झिलमिला उठी।

बासा पर पहुंचकर हिरामन ने देखा, टप्पर के पास खड़ा बतिया रहा है कोई, हीराबाई से। धुन्नी ग्रौर लहसनवां ने एक ही साथ कहा—कहां रह गए पीछे? बहुत देर से खोज रही है कम्पनी···!

हिरामन ने टप्पर के पास जाकर देखा, ग्ररे, यह तो वही बक्सा ढोने-वाला नौकर, जो चम्पानगर मेले में हीराबाई को गाड़ी पर बैठाकर ग्रंधेरे में गायब हो गया था।

—ग्रा गए हिरामन! ग्रच्छी बात, इधर ग्राग्रो।···यह लो ग्रपना भाड़ा ग्रौर यह लो ग्रपनी दच्छिना। पच्चीस-पच्चीस, पचास।

हिरामन को लगा किसीने ग्रासमान से धकेलकर धरती पर गिरा दिया। किसीने क्यों, इस बक्सा ढोनेवाले ग्रादमी ने। कहां से ग्रा गया? उसकी जीभ पर ग्राई हुई बात जीभ पर ही रह गई···इस्स! दच्छिना! वह चुपचाप खड़ा रहा।

हीराबाई बोली—लो, पकड़ो। ग्रौर सुनो, कल सुबह रौता कम्पनी में ग्राकर मुझसे भेंट करना। पास बनवा दूंगी।···बोलते क्यों नहीं?

लालमोहर ने कहा—इलाम-बकसीस दे रही है मालकिन, ले लो हिरामन। हिरामन ने कटकर लालमोहर की ग्रोर देखा।···बोलने का

ज़रा भी ढंग नहीं इस लालमोहरा को।

धुन्नीराम की स्वगतोक्ति सभी ने सुनी, हीराबाई ने भी—गाड़ी-बैल छोड़कर नौटंगी कैसे देख सकता है कोई गाड़ीवान, मेले में।

हिरामन ने रुपया लेते हुए कहा—क्या बोलेंगे!—उसने हंसने की चेष्टा की :···कम्पनी की औरत कम्पनी में जा रही है। हिरामन का क्या! बक्सा ढोनेवाला रास्ता दिखाता हुआ आगे बढ़ा—इधर से। हीराबाई जाते-जाते रुक गई। हिरामन के बैलों को सम्बोधित करके बोली—अच्छा, मैं चली भैयन!

बैलों ने भैयन शब्द पर कान हिलाए।

—??···??······× ×······!

—भा-इ-यो, आज रात! दि रौता संगीत नौटंकी कम्पनी के स्टेज पर! गुलबदन देखिए, गुलबदन! आपको यह जानकर खुशी होगी कि मथुरामोहन कम्पनी की मशहूर एक्ट्रस मिस हीरादेवी, जिसकी एक-एक अदा पर हज़ार जान फिदा हैं इस बार हमारी कम्पनी में आ गई हैं। याद रखिए। आज की रात। मिस हीरादेवी गुलबदन···!

नौटंकीवालों के इस ऐलान से मेले की हर पट्टी में सरगर्मी फैल रही है।···हीराबाई? मिस हीरादेवी? लैला, गुलबदन,······? फिलिम एक्ट्रैस को मात करती है।···तेरी बांकी अदा पर मैं खुद हूं फिदा, तेरी चाहत की दिलबर बयां क्या करूं। यही खाहिश है कि-इ-इ-इ तू मुझको देखा करे, और दिलोजान मैं तुमको देखा करूं।···किर्र-र्र-र्र-र्र···कड़ड़ड़ड़र्र-र्र-घन-घन-घन-धड़ाम!

हर आदमी का दिल नगाड़ा हो गया है!

लालमोहर दौड़ता-हांफता बासा पर आया—ऐ, ऐ हिरामन, यहां क्या बैठे हो, चलकर देखो कैसा जैजैकार हो रहा है। मय बाजा-गाजा, छापी-फाहरम के साथ हीराबाई का जै-जै हो रहा है।

हिरामन हड़बड़ाकर उठा। लहसनवां ने कहा—धुन्नी काका, तुम

बासा पर रहो, मैं भी देख आऊं।

धुन्नी की बात कौन सुनता है! तीनों जन नौटंकी कम्पनी की एलानिया पार्टी के पीछे-पीछे चलने लगे। हर नुक्कड़ पर रुककर, बाजा बन्द करके ऐलान किया जाता है। ऐलान के हर शब्द पर हिरामन पुलक उठता है। हीराबाई का नाम, नाम के साथ अदा-फिदा वगैरह सुनकर उसने लालमोहर की पीठ थपथपा दी—धन्न है! है या नहीं?

लालमोहर ने कहा—अब बोलो! अब भी नौटंगी नहीं देखोगे?

सुबह से ही धुन्नीराम और लालमोहर समझा रहे थे, समझाकर हार चुके थे।···कम्पनी में जाकर भेंट कर आओ। जाते-जाते पुरसिस कर गई है। लेकिन हिरामन की बस एक बात—धत्त, कौन भेंट करने जाए! कम्पनी की औरत, कम्पनी में गई। अब उससे क्या लेना-देना! चीन्हेगी भी नहीं!

वह मन ही मन रूठा हुआ था। ऐलान सुनने के बाद उसने लालमोहर से कहा—ज़रूर देखना चाहिए, क्यों लालमोहर?

दोनों आपस में सलाह करके रौता कम्पनी की ओर चले। खेमे के पास पहुंचकर हिरामन ने लालमोहर को इशारा किया, पूछ-ताछ करने का भार लालमोहर के सिर। लालमोहर कचराही बोलना जानता है। लालमोहर ने एक काले कोटवाले से कहा—बाबू साहेब, ज़रा सुनिए तो।

काले कोटवाले ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—क्या है? इधर क्यों?

लालमोहर की कचराही बोली गड़बड़ा गई। तेवर देखकर बोला—गुलगुल···नहीं-नहीं···बुल-बुल···नहीं···।

हिरामन ने झट से सम्हाल दिया—हीरादेवी किधर रहती हैं, बता सकते हैं?

उस आदमी की आंखें हठात् लाल हो गईं। सामने खड़े नेपाली सिपाही को पुकारकर कहा—इन लोगों को क्यों आने दिया इधर?

—हिरामन !···वही फेनूगिलासी आवाज़ किधर से आई ? खेमे के परदे को हटाकर हारावाई ने बुलाया—यहां आ जाओ, अन्दर।··· देखो, बहादुर ! इसका पहचान लो । यह मेरा हिरामन है। समझे !

नेपाली दरबान हिरामन की ओर देखकर ज़रा मुस्कराया और चला गया। काले कोटवाले से जाकर कहा—हीराबाई का आदमी है। नहीं रोकने बोला !

लालमोहर पान ले आया नेपाली दरबान के लिए—खाया जाए !

—इस्स ! एक नहीं, पांच पास । चारों अठनिया ! बोली कि जब तक मेले में हो, रोज रात में आकर देखना। सबका ख्याल रखती है ! बोली कि तुम्हारे और साथी हैं, सभीके लिए पास ले जाओ। कम्पनी की औरतों की बात ही निराली होती है ! है या नहीं ?

लालमोहर ने लाल कागज़ के टुकड़ों को छूकर देखा—पा-स ! वाह रे हिरामन भाई !···लेकिन पांच पास लेकर क्या होगा ? पलट-दास तो फिर पलटकर आया ही नहीं है अभी तक।

हिरामन ने कहा—जाने दो अभागे को। तकदीर में लिखा नहीं। ···हां पहले गुरुकसम खानी होगी सभी को, कि गांव-घर में यह बात एक पंछी भी न जान पाए।

लालमोहर ने उत्तेजित होकर कहा—कौन साला बोलेगा, गांव में जाकर ? पलटा ने अगर बदमाशी की तो दूसरी बार से फिर साथ नहीं लाऊंगा।

हिरामन ने अपनी थैली आज हीरावाई के ज़िम्मे रख दी है। मेले का क्या ठिकाना ! किस्म-किस्म के पाकिटकाट लोग हर साल आते हैं। अपने साथी-संगियों का भी क्या भरोसा ! हीरावाई मान गई। हिरामन की कपड़े की काली थैली को उसने चमड़े के बक्स में बन्द कर दिया। बक्से के ऊपर भी कपड़े का खोल और अन्दर भी झलमल रेशमी अस्तर ! मन का मान-अभिमान दूर हो गया।

लालमोहर और धुन्नीराम ने मिलकर हिरामन की बुद्धि की तारीफ की; उसके भाग्य को सराहा बार-बार। उसके भाई और भाभी की निन्दा की, दबी जबान से। हिरामन के जैसा हीरा भाई मिला है, इसी-लिए! कोई दूसरा भाई होता तो···।

लहसनवां का मुंह लटका हुआ है। ऐलान सुनते-सुनते न जाने कहां चला गया कि घड़ी-भर सांझ होने के बाद लौटा है। लालमोहर ने एक मालिकाना झिड़की दी है, गाली के साथ—सोहदा कहीं का!

धुन्नीराम ने चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ाते हुए कहा—पहले यह फैसला कर लो कि गाड़ी के पास कौन रहेगा।

—रहेगा कौन, यह लहसनवां कहां जाएगा?

लहसनवां रो पड़ा—हे ए-ए मालिक, हाथ जोड़ते हैं। एक्के झलक! बस एक झलक!

हिरामन ने उदारतापूर्वक कहा—अच्छा-अच्छा, एक झलक क्यों, एक घण्टा देखना। मैं आ जाऊंगा।

नौटंकी शुरू होने के दो घण्टे पहले से ही नगाड़ा बजना शुरू हो जाता है। और नगाड़ा शुरू होते ही लोग पतंगों की तरह टूटने लगते हैं। टिकट घर के पास भीड़ देखकर हिरामन को बड़ी हंसी आई—लाल-मोहर, उधर देख कैसी धक्कमधुक्की कर रहे हैं लोग!

—हिरामन भाय!

—कौन, पलटदास! कहां की लदनी लाद आए?—लालमोहर ने पराये गांव के आदमी की तरह पूछा।

पलटदास ने हाथ मलते हुए माफी मांगी—कसूरवार हैं; जो सजा दो तुम लोग सब मंजूर है। लेकिन सच्ची बात कहें कि सिया सुकुमारी···।

हिरामन के मन का पुरइन नगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है। बोला—देख पलटा, यह मत समझना कि गांव-घर की जनाना है। देखो, तुम्हारे लिए भी पास दिया है, पास ले लो अपना, तमाशा देखो।

लालमोहर ने कहा—लेकिन एक शर्त पर मिलेगा। बीच-बीच में लहसनवां को भी···।

पलटदास को कुछ बताने की ज़रूरत नहीं। वह लहसनवां से बात-चीत कर आया है अभी।

लालमोहर ने दूसरी शर्त सामने रखी—गांव में अगर यह बात मालूम हुई किसी तरह··· ।

—राम-राम !—दांत से जीभ को काटते हुए कहा पलटदास ने।

पलटदास ने बताया—अठनिया फाटक इधर है। फाटक पर खड़े दरवान ने हाथ से पास लेकर उनके चेहरे को बारी-बारी से देखा। बोला—यह तो पास है। कहां से मिला ?

अब लालमोहर की कचराही बोली सुने कोई ! उसके तेवर देखकर दरबान घबरा गया—मिलेगा कहां से ? अपनी कम्पनी से पूछ लीजिए जाकर। चार ही नहीं, देखिए एक और है—जेब से पांचवां पास निकाल-कर दिखाया लालमोहर ने।

एक रुपया वाले फाटक पर नेपाली दरवान खड़ा था। हिरामन ने पुकारकर कहा—ए सिपाही दाजू, सुबह को ही पहचनवा दिया और अभी भूल गए ?

नेपाली दरबान बोला—हीराबाई का आदमी है सब। जाने दो। पास है तो फिर काहे को रोकता है ?

अठनिया दर्जा !

तीनों ने 'कपड़घर' को अन्दर से पहली बार देखा। सामने कुरसी-बेंच वाले दर्जे हैं। परदे पर राम-बन-गमन की तस्वीर है। पलटदास पहचान गया। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया परदे पर अंकित राम, सिया सुकुमारी और लखन लला को। जै हो, जै हो ! पलटदास की आंखें भर आईं।

हिरामन ने कहा—लालमोहर, छापी सभी खड़े हैं या चल रहे हैं ?

लालमोहर अपने बगल में बैठे दर्शकों से जान-पहचान कर चुका है।

उसने कहा—खेला अभी परदा के भीतर है। अभी जमिनका दे रहा है, लोग जमाने के लिए।

पलटदास ढोलक बजाना जानता है, इसलिए नगाड़े के ताल पर गरदन हिलाता है और दियासलाई पर ताल काटता है। बीड़ी आदान-प्रदान करके हिरामन ने भी एकाध जान-पहचान कर ली। लालमोहर के परिचित आदमी ने चादर से देह को ढकते हुए कहा—नाच शुरू होने में अभी देरी है, तब तक एक नींद ले लें।···सब दर्जा से अच्छा अठनिया दर्जा। सबसे पीछे सबसे ऊंची जगह पर है। ज़मीन पर गरम पुआल ! हे-हे ! कुरसी-बेंच पर बैठकर इस सरदी के मौसम में तमाशा देखनेवाले अभी घुच-घुच कर उठेंगे चाह पीने।

उस आदमी ने अपने संगी से कहा—खेला शुरू होने पर जगा देना। नहीं-नहीं, खेला शुरू होने पर नहीं, हिरिया जब स्टेट पर उतरे, हमको जगा देना।

हिरामन के कलेजे में ज़रा आंच लगी।···हिरिया ! बड़ा लटपटिया आदमी मालूम पड़ता है। उसने लालमोहर की आंख के इशारे से कहा—इस आदमी से बतियाने की ज़रूरत नहीं।

···घन-घन-घन-घड़ाम ! परदा उठ गया। हे-ए, हे-ए, हीराबाई शुरू में ही उतर गई स्टेट पर ! कपड़घर खचमखच भर गया है। हीरामन का मुंह अचरज से खुल गया ! लालमोहर को न जाने क्यों ऐसी हंसी आ रही है। हीराबाई के हर पद पर वह हंसता है, बेवजह।

गुलबदन दरबार लगाकर बैठी है। ऐलान कर रही है, जो आदमी तख्त हज़ारा बनाकर ला देगा, मुंहमांगी चीज इनाम में दी जाएगी।··· अजी, है कोई ऐसा फनकार, तो हो जाए तैयार, बनाकर लाए तख्त-हज़ा-रा-आ ! किड़किड़-किर्रि···अलबत्त नाचती है ! क्या गला है ! मालूम है, यह आदमी कहता है कि हीराबाई पान-बीड़ी, सिगरेट-जर्दा कुछ नहीं खाती !···ठीक कहता है। बड़ी नेम वाली रंडी है।···कौन कहता है कि रंडी है ! दांत में मिस्सी कहां है ? पौडर से दांत धो लेती

होगी। हरगिज नहीं।···कौन आदमी है, बात की बेबात करता है ! कंपनी की औरत को पतुरिया कहता है ! तुमको बात क्यों लगी ? कौन है रंडी का भड़वा ? मारो, साले को ! मारो ! तेरी··· ।

हो-हल्ले के बीच, हिरामन की आवाज़ कपटघर को फाड़ रही है —आओ, एक-एक की गरदन उतार लेंगे।

लालमोहर दुआली से पटापट पीटता जा रहा है सामने के लोगों को। पलटदास एक आदमी की छाती पर सवार है—साला, सिया सुकुमारी को गाली देता है, सो भी मुसलमान होकर ?

धुन्नीराम शुरू से ही चुप था। मारपीट शुरू होते ही वह कपड़घर से निकलकर बाहर भागा।

काले कोटवाले नौटंकी के मैनेजर नेपाली सिपाही के साथ दौड़े आए। दारोगा साहब ने हण्टर से पीट-पाट शुरू की। हण्टर खाकर लालमोहर तिलमिला उठा; कचराही बोली में भाषण देने लगा—दरोगा साहब, मारते हैं, मारिये। कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह पास देख लीजिए, एक पास पाकिट में भी है। देख सकते हैं हजूर। टिकस नहीं पास !···तब हम लोगों के सामने कम्पनी की औरत को कोई बुरी बात कहे तो कैसे छोड़ देंगे ?

कम्पनी के मैनेजर की समझ में आ गई सारी बात। उसने दारोगा को समझाया—हजूर, मैं समझ गया। यह सारी बदमाशी मथुरामोहन कम्पनीवालों की है। तमाशे में झगड़ा खड़ा करके कम्पनी को बदनाम ···नहीं हुजूर, इन लोगों को छोड़ दीजिए, हीराबाई के आदमी हैं। बेचारी की जान खतरे में है। हुजूर से कहा था न !

हीराबाई का नाम सुनते ही दारोगा ने तीनों को छोड़ दिया। लेकिन तीनों की दुआली छीन ली गई। मैनेजर ने तीनों को एक रुपये वाले दर्जे में कुरसी पर बैठाया—आप लोग यहीं बैठिए। पान भिजवा देता हूं। कपड़घर शान्त हुआ और हीराबाई स्टेज पर लौट आई।

नगाड़ा फिर घनघना उठा।

थोड़ी देर बाद तीनों को एक ही साथ धुन्नीराम का ख्याल हुआ—अरे, धुन्नीराम कहां गया ?

—मालिक, ओ मालिक ! लहसनवां कपड़घर के बाहर चिल्ला-चिल्लाकर पुकार रहा है—ओ लालमोहर मा-लि-क !

लालमोहर ने तारस्वर में जवाब दिया—इधर से, इधर से। एक टकिया फाटक से। सभी दर्शकों ने लालमोहर की ओर मुड़कर देखा। लहसनवां को नेपाली सिपाही लालमोहर के पास ले आया। लालमोहर ने जेब से पास निकालकर दिखा दिया। लहसनवां ने आते ही पूछा—मालिक, कौन आदमी क्या बोल रहा था ? बोलिए तो ज़रा। चेहरा दिखला दीजिए, उसकी एक झलक !

लोगों ने लहसनवां की चौड़ी और सपाट छाती देखी। जाड़े के मौसम में भी खाली देह !···चेले-चाटी के साथ हैं ये लोग !

लालमोहर ने लहसनवां को शान्त किया।

···तीनों-चारों से मत पूछे कोई नौटंकी में क्या देखा ! किस्सा कैसे याद रहे ! हिरामन को लगता था, हीराबाई शुरू से ही उसीकी ओर टकटकी लगाकर देख रही है, गा रही है, नाच रही है। लालमोहर को लगता था, हीराबाई उसीकी ओर देखती है। वह समझ गई है, हिरामन से भी ज़्यादा पावरवाला आदमी है लालमोहर ! पलटदास किस्सा समझता है।···किस्सा और क्या होगा, रमैन की ही बात ! वही राम, वही सीता, वही लखनलला और वही राबन ! सिया सुकुमारी को रामजी से छीनने के लिए राबन तरह-तरह का रूप धरकर आता है। राम और सीता भी रूप बदल लेते हैं। यहां भी तख्त हज़ारा बनाने-वाला माली का बेटा राम है। गुलबदन सिया सुकुमारी है। माली के लड़के का दोस्त लखनलला है और सुलतान है राबन।···धुन्नीराम को बुखार है तेज़ ! लहसनवां को सबसे अच्छा जोकर का पार्ट लगा है···चिरैया तोंहके लेके ना जइवै नरहट के बज़रिया ! वह उस जोकर से दोस्ती लगाना चाहता है।···नहीं लगायेगा दोस्ती, जोकर साहब ?

हिरामन को एक गीत की आधी कड़ी हाथ लगी है—मारे गए गुलफाम ! कौन था यह गुलफाम ! हीराबाई रोती हुई गा रही थी—अजी हां, मारे गए गुलफाम ! टिड़िड़िड़ि···बेचारा गुलफाम !

तीनों की दुआली वापस देते हुए पुलिस के सिपाही ने कहा—लाठी-दुआली लेकर नाच देखने आते हो ?

दूसरे दिन मेले-भर में यह बात फैल गई—मथुरामोहन कम्पनी से भागकर आई है हीराबाई, इसलिए इस बार मथुरामोहन कम्पनी नहीं आई है।···उसके गुंडे आए हैं।···हीराबाई भी कम नहीं। बड़ी खेलाड़ औरत है। तेरह-तेरह देहाती लठैत पाल रही है। ···'वाह मेरी जान' भी कहे तो कोई। मजाल है !

दस दिन। दिन-रात !···

दिन-भर भाड़ा ढोता हिरामन। शाम होते ही नौटंकी का नगाड़ा बजने लगता। नगाड़े की आवाज़ सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास मंडराने लगती—भैया···मीता···हिरामन···उस्ताद···गुरुजी ! हमेशा कोई न कोई बाजा उसके मन के कोने में बजता रहता, दिन-भर। कभी हारमोनियम, कभी नगाड़ा कभी ढोलक, और कभी हीरा-बाई की पैंजनी। उन्हीं साजों की गत पर हिरामन उठता-बैठता, चलता फिरता। नौटंकी कम्पनी के मैनेजर से लेकर परदा खींचनेवाले तक उसको पहचानते हैं।···हीराबाई का आदमी है।

पलटदास हर रात नौटंकी शुरू होने के समय श्रद्धापूर्वक स्टेज को नमस्कार करता, हाथ जोड़कर। लालमोहर, एक दिन अपनी कचराही बोली सुनाने गया था हीराबाई को। हीराबाई ने पहचाना ही नहीं। तब से उसका दिल छोटा हो गया है। उसका नौकर लहसनवां उसके हाथ से निकल गया है, नौटंकी कम्पनी में भर्ती हो गया है। जोकर से उसकी दोस्ती हो गई है। दिन-भर पानी भरता है, कपड़ा धोता है। कहता है, गांव में क्या है जो जाएंगे। लालमोहर उदास रहता है।

धुन्नीराम घर चला गया है, बीमार होकर।

हिरामन आज सुबह से तीन वार लदनी लादकर स्टेशन आ चुका है। आज न जाने क्यों उसको अपनी भौजाई की याद आ रही है।... धुन्नीराम ने कुछ कह तो नहीं दिया है, बुखार के झोंके में ! यहीं कितना अटर-पटर बक रहा था—गुलबदन, तख्त हज़ारा !...लहसनवां मौज में है। दिन-भर हीराबाई को देखता होगा। कल कह रहा था, हिरामन मालिक, तुम्हारे अकबाल से खूब मौज में हूं। हीराबाई को साड़ी धोने के बाद कठौते का पानी अतर-गुलाब हो जाता है। उसमें अपनी गमछी डुबाकर छोड़ देता हूं। लो सूंघोगे ?...हर रात, किसी न किसीके मुंह से सुनता है वह—हीराबाई रंडी है। कितने लोगों से लड़े वह ! बिना देखे ही लोग कैसे कोई बात बोलते हैं ! राजा को भी लोग पीठ पीछे गाली देते हैं !...आज वह हीराबाई से मिलकर कहेगा, नौटंकी कम्पनी में रहने से बहुत बदनाम करते हैं लोग। सरकस कम्पनी में क्यों नहीं काम करतीं ?...सबके सामने नाचती है, हिरामन का कलेजा दपदप जलता रहता है उस समय। सरकस कम्पनी में बाघ को नचाएगी। बाघ के पास जाने की हिम्मत कौन करेगा ! सुरक्षित रहेगी हीराबाई।... किधर की गाड़ी आ रही है ?

—हिरामन, ए हिरामन भाय !—लालमोहर की बोली सुनकर हिरामन ने गरदन मोड़कर देखा।...क्या लादकर आया है लालमोहर ?

—तुमको ढूंढ़ रही है हीराबाई इशटीशन पर। जा रही है।—एक ही सांस में सुना गया। लालमोहर की गाड़ी पर ही आई है मेले से।

—जा रही है ? कहां ? रेलगाड़ी से जा रही है ?

हिरामन ने गाड़ी खोल दी। मालगुदाम के चौकीदार से कहा—भैया, ज़रा गाड़ी-बैल देखते रहिए। आ रहे हैं।

—उस्ताद !—जनाना मुसाफिरखाने के फाटक के पास हीराबाई ओढ़नी से मुंह-हाथ ढककर खड़ी थी। थैली बढ़ाती हुई बोली—लो ! हे भगवान ! भेंट हो गई, चलो, मैं तो उम्मीद खो चुकी थी। तुमसे

अब भेंट नहीं हो सकेगी।···मैं जा रही हूं गुरुजी !

बक्सा ढोनेवाला आदमी आज कोट-पतलून पहनकर बाबू साहब बन गया है। मालिकों की तरह कुलियों को हुक्म दे रहा है—जनाना दर्जा में चढ़ाना। अच्छा ?

हिरामन हाथ में थैली लेकर चुपचाप खड़ा रहा। कुरते के अन्दर से थैली निकालकर दी है हीराबाई ने।···चिड़िया की देह की तरह गरम है थैली।

—गाड़ी आ रही है।—बक्सा ढोनेवाले ने मुंह बनाते हुए हीराबाई की ओर देखा। उसके चेहरे का भाव स्पष्ट है—इतना ज्यादा क्या है···?

हीराबाई चंचल हो गई। बोली—हिरामन, इधर आओ, अन्दर। मैं फिर लौटकर जा रही हूं मथुरामोहन कम्पनी में। अपने देश की कम्पनी है।···बनैली मेला आओगे न ?

हीराबाई ने हिरामन के कंधे पर हाथ रखा···इस बार दाहिने कंधे पर। फिर अपनी थैली से रुपया निकालते हुए बोली—एक गरम चादर खरीद लेना।···

हिरामन की बोली फूटी, इतनी देर के बाद—इस्स ! हरदम रुपैया-पैसा ! रखिए रुपैया ! ···क्या करेंगे चादर ?

हीराबाई का हाथ रुक गया। उसने हीरामन के चेहरे को गौर से देखा। फिर बोली—तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है। क्यों मीता ?··· महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरुजी।

गला भर आया हीराबाई का। बक्सा ढोनेवाले ने बाहर से आवाज दी—गाड़ी आ गई। हिरामन कमरे से बाहर निकल आया। बक्सा ढोनेवाले ने नौटंकी के जोकर जैसा मुंह बनाकर कहा—लाटफारम से बाहर भागो। बिना टिकट के पकड़ेगा तो तीन महीने की हवा···।

हिरामन चुपचाप फाटक से बाहर जाकर खड़ा हो गया।···टीशन की बात, रेलवे का राज ! नहीं तो इस बक्सा ढोनेवाले का मुंह सीधा

कर देता हिरामन।···

हीराबाई ठीक सामनेवाली कोठरी में चढ़ी। इस्स! इतना टान! गाड़ी में बैठकर भी हिरामन की ओर देख रही है, टुकुर-टुकुर।··· लालमोहर को देखकर जी जल उठता है, हमेशा पीछे-पीछे; हरदम हिस्सादारी सूझती है।···

गाड़ी ने सीटी दी। हिरामन को लगा, उसके अन्दर से कोई आवाज़ निकलकर सीटी के साथ ऊपर की ओर चली गई—कू-उ-उ! इ-स्स···! ···छि-ई-ई-छक्क! गाड़ी हिली। हिरामन ने अपने दाहिने पैर के अंगूठे को बांए पैर की एड़ी से कुचल लिया। कलेजे की धड़कन ठीक हो गई।···हीराबाई हाथ की बैंगनी साफी से चेहरा पोंछती है। साफी हिलाकर इशारा करती है—अब जाओ।···आखिरी डब्बा गुजरा; प्लेटफार्म खाली···सब खाली···खोखले···मालगाड़ी के डब्बे···! दुनिया ही खाली हो गई मानो! हिरामन अपनी गाड़ी के पास लौट आया।

हिरामन ने लालमोहर से पूछा—तुम कब तक लौट रहे हो गांव?

लालमोहर बोला—अभी गांव जाकर क्या करेंगे? यही तो भाड़ा कमाने का मौका है! हीराबाई चली गई, मेला अब टूटेगा।

—अच्छी बात। कोई संवाद देना है घर?

लालमोहर ने हिरामन को समझाने की कोशिश की। लेकिन हिरामन ने अपनी गाड़ी गाँव की ओर जानेवाली सड़क की ओर मोड़ दी।···अब मेले में क्या धरा है। खोखला मेला!

रेलवे लाइन के बगल से बैलगाड़ी की कच्ची सड़क गई है दूर तक। हिरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है। उसके मन में फिर पुरानी लालसा झांकी, रेलगाड़ी पर सवार होकर गीत गाते हुए जगरनाथ धाम जाने की लालसा।···उलटकर अपने खाली टप्पर की ओर देखने की हिम्मत नहीं होती है। पीठ में आज भी गुदगुदी लगती है। आज भी रह-रहकर चम्पा का फूल खिल उठता है उसकी गाड़ी में। एक गीत की टूटी कड़ी पर नगाड़े का ताल कट जाता है बार-बार!···

उसने उलटकर देखा, बोरे भी नहीं, बांस भी नहीं, बाघ भी नहीं,··· परी···देवी···मीता···हीरादेवी···महुआ घटवारिन—को-ई नहीं। मरे हुए मुहूर्तों की गूंगी आवाज़ें मुखर होना चाहती हैं। हिरामन के ओठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है—कम्पनी की औरत की लदनी··· ।

हिरामन ने हठात् अपने दोनों बैलों को झिड़की दी, दुआली से मारते हुए बोला—रेलवे लाइन की ओर उलट-उलटकर क्या देखते हो? दोनों बैलों ने कदम खोलकर चाल पकड़ी। हिरामन गुनगुनाने लगा—अजी हां, मारे गए गुलफाम···!

2–66–4–2